Peer Reviewed & Refereed Journal
अंक : 02 वर्ष : 01 अप्रैल-जून 2021
साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक ऑनलाइन त्रैमासिक - पत्रिका
www.epradeep.com

ई- प्रदीप
ऑनलाइन पत्रिका

ई - प्रदीप

सम्पादक
डॉ. राहुल उठवाल

डिवाइन फैथ फेलोशिप सोसाइटी द्वारा प्रकाशित हिन्दी साहित्य की पत्रिका

सुहृदय विद्वतजन,

"ई-प्रदीप" त्रैमासिक ऑनलाइन पत्रिका के **आगामी** अंक **जुलाई-सितम्बर 2021** हेतु आपके शोध-आलेख, कहानियां, कविताएँ, पुस्तक समीक्षाएं एवं अन्य विधाओं की रचनाएँ आमंत्रित हैं। कृपा कर अपनी रचनाएँ हिन्दी यूनिकोड फॉण्ट में ही भेजें किसी अन्य फॉण्ट में रचनाएँ स्वीकार नही की जायेगी। अपनी रचना के साथ अपना एक नवीनतम फोटो एवं जीवन परिचय निम्नलिखित मेल आई डी पर अवश्य भेजें-

eppatrika@gmail.com

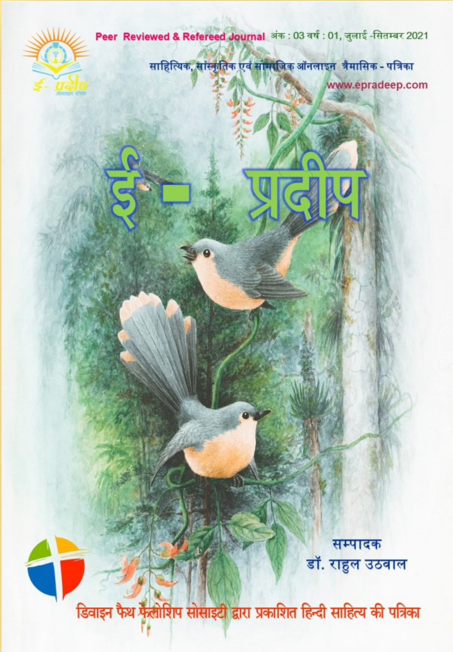

शोध-आलेख भेजने वाले लेखकों के लिए निर्देश :

- **शोध आलेख निम्न प्रारूप में ही भेजें।**
- शोध आलेख विषय
- नाम, विभाग का नाम, संस्थान का नाम अथवा पता, ई-मेल एवं मोबाइल नंबर
- शोध सारांश जो 200 शब्दों से अधिक न हो
- बीज शब्द, भूमिका, निष्कर्ष
- संदर्भ में लेखक का नाम, प्रकाशन वर्ष, पुस्तक का नाम, प्रकाशन का नाम, प्रकाशन का स्थान अवश्य लिखें। ध्यान रखें कि रचनाएँ पूर्णत: मौलिक हों। पूर्व प्रकाशित रचना यदि अज्ञानतावश प्रकाशित हो जाती है तो उसका पूर्ण उत्तरदायित्व साहित्यकार एवं रचनाकार का होगा।
- शोध-पत्र 3000 - 3500 शब्दों से अधिक न हो तथा 200 शब्दों का सारांश भी प्रेषित करें। शोध आलेख ए-4 साइज़ के कागज पर कंप्यूटर से एक ओर यूनिकोड अथवा मंगल फॉण्ट साइज़ 14 में टंकण किया हुआ ही भेजें। भेजते समय शोध पत्र एम एस वर्ड फाइल में सीधे दी गयी ई-मेल आई डी पर डाउनलोड करें, मेल बॉक्स में कॉपी पेस्ट न करें। किसी अन्य फॉण्ट, स्केन, पीडीएफ अथवा मेल बॉक्स में कॉपी पेस्ट कर भेजी गयी रचना किसी भी स्थिति में स्वीकार नहीं की जायेगी। उसके लिए अलग से कोई प्रतिउत्तर भी नहीं दिया जायेगा।
- यदि शोध-आलेख एवं भेजी गयी रचना कापीराईट का उल्लंघन करती है अथवा किसी अन्य रचना या पूर्व प्रकाशित रचना का कोई अंश बिना प्रकाशक एवं लेखक की पूर्वानुमति के प्रकाशित हो जाता है तो उसका पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक एवं रचनाकार का होगा। संपादक परोक्ष या अपरोक्ष रूप से इसके लियें उत्तरदायी नही होगा।
- कृपया शोध-आलेख भेजने के पूर्व यह सुनिश्चित कर लें कि उसमे व्याकरण एवं मात्राओं की गलतियाँ किसी भी स्थिति न हों।
- शोध पत्र के प्रकाशन हेतु ई-प्रदीप पत्रिका की वेबसाइ www.epraddep.com पर दिये गये "मौलिकता का प्रमाण-पत्र" (Certification of Originality) डाउनलोड करें एवं उसे पूर्ण भरकर अवश्य भेजें, इसमें शोध-आलेख अन्यत्र न भेजे जाने की पुष्टि की गयी हो। शोध-पत्र की सामग्री कहीं से चोरी की गयी (plagiarism) नहीं होनी चाहिए। शोध पत्र में सारणी एवं चित्रों का प्रयोग लेख के बीच में न करते हुए अंत में सन्दर्भ या संलग्नक के रूप में करें।
- कृपाया लेटेस्ट अपडेट के लिए निम्न लिंक https://chat.whatsapp.com/Gp9fGiJZgvCBqLxyou57xY द्वारा व्हाट्सएप्प समूह एवं टेलीग्राम एप https://t.me/joinchat/HDaPVF1w0YwPGJlo द्वारा जुड़ जाएँ।

www.epradeep.com ई - प्रदीप अंक : 02 वर्ष : 01 अप्रैल-जून 2021
साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक ऑनलाइन त्रैमासिक - पत्रिका

प्रधान सम्पादक - डॉ. राहुल उठवाल

सम्पर्क

ई - प्रदीप पत्रिका ऑनलाइन (त्रैमासिक)
आई - 605, वी.वी.आई.पी . एड्रेसेज़, राजनगर
एक्सटेंशन गाजियाबाद, उ. प्र. 201017
दूरध्वनि: 7066508089, **ई-मेल**:
eppatrika@gmail.com, info@epradeep.com

पत्रिका शुल्क - ई - प्रदीप पूर्ण रूप से निशुल्क है।

यदि आप ई - प्रदीप के प्रकाशन हेतु स्वेछा से आर्थिक सहयोग करना चाहते हैं तो निम्नलिखित बैंक अकाउंट में सहयोग राशि दे सकते हैं- खाता संख्या 436010100229135, आई.एफ.एस.सी UTIB0000436, नाम: Rahul Uthwal/ यू.पी.आई 7066508089@axisbank अथवा फोनपे / गूगलपे / पेटीएम 7066508089

- ई -प्रदीप से संबंधित किसी भी जानकारी के लिए कृपया ई -प्रदीप के ई-मेल पर मेल करें अथवा दूरभाष पर कार्यालय समय दोपहर 12:00 से संध्या 4:00 बजे तक सम्पर्क करें।
- ई-प्रदीप में प्रकाशित की गयी सभी विधाओं की रचनाएँ लेखकों एवं रचनाकारों की मौलिक रचनाएँ हैं। प्रकाशक और सम्पादक किसी भी रूप में इनके लिएं उत्तरदायी (जिम्मेदार) नहीं होगा।
- प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक, अनुवादक एवं डिवाइन फैथ फेलोशिप सोसाइटी की अनुमति आवश्यक है।
- ई-प्रदीप पत्रिका से संबंधित समस्त विवाद चदौसी, जनपद सम्भल न्यायालय के अधीन होगा।

पत्रिका मे व्यक्त विचार लेखकों के अपने विचार हैं। इनसे सम्पादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

डिवाइन फैथ फेलोशिप सोसाइटी द्वारा प्रकाशित हिन्दी साहित्य की पत्रिका

Peer Reviewed & Refereed Journal

www.epradeep.com **ई - प्रदीप** अंक : 02 वर्ष : 01 अप्रैल-जून 2021
साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक ऑनलाइन त्रैमासिक - पत्रिका

सम्पादकीय समिति

संरक्षक
डॉ. डी. एन. शर्मा
पूर्व प्राचार्य एवं अध्यक्ष (हिन्दी विभाग)
एम. जी.एम. महाविद्यालय, सम्भल, उ. प्र.

सम्पादक
डॉ. राहुल उठवाल

संयुक्त सम्पादक
डॉ. प्रवीन चंद बिष्ट
सहा. प्रोफ़ेसर एवं विभागाध्यक्ष (हिन्दी)
रामनारायण रुइया स्वायत्त
महाविद्यालय, मुम्बई

सह- सम्पादक
डॉ. ईश्वर पवार
एसो प्रोफ़ेसर एवं विभागाध्यक्ष
सी टी बोरा महाविद्यालय, शिरूर
महाराष्ट्र

सह- सम्पादक
डॉ. नीलम ऋषिकल्प
एसो. प्रोफ़ेसर (हिन्दी विभाग)
राम लाल आनन्द महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सह- सम्पादक
डॉ. सीमा शर्मा
एसो. प्रोफ़ेसर (हिन्दी)
जानकी देवी मेमोरियल कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डिवाइन फैथ फेलोशिप सोसाइटी द्वारा प्रकाशित हिन्दी साहित्य की पत्रिका

Peer Reviewed & Refereed Journal

www.epradeep.com ई - प्रदीप अंक : 02 वर्ष : 01 अप्रैल-जून 2021
साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक ऑनलाइन त्रैमासिक - पत्रिका

पीर रिव्यू समिति

1. **प्रो. नवीन चन्द्र लोहानी**
   विभागाध्यक्ष (हिन्दी विभाग)
   चौ.चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

2. **डॉ. सतीश पाण्डे**
   पूर्व विभागाध्यक्ष (हिन्दी विभाग)
   के.जे. सौमया स्वायत्त महाविद्यालय, विद्याविहार, मुम्बई
   सम्पादक—समीचीन (यू जी सी केयर लिस्टिड जर्नल)

3. **डॉ. महेश 'दिवाकर' (डी. लिट्)**
   साहित्य भूषण से सम्मानित
   पूर्व विभागाध्यक्ष (हिन्दी विभाग)
   जी. एस. हिन्दू महाविद्यालय चांदपुर-स्याऊ, बिजनौर

4. **डॉ. मुकेश चन्द्र गुप्ता**
   एसो. प्रोफ़ेसर एवं विभागाध्यक्ष (हिन्दी विभाग)
   एम. एच. महाविद्यालय, मुरादाबाद

5. **प्रो. विजय कुमार रोड़े**
   विभागाध्यक्ष (हिन्दी विभाग)
   सावित्रीबाई फूले विश्वविद्यालय, पुणे

6. **डॉ. अनीता कपूर**
   लेखक / कवि / पत्रकार
   हेवर्ड, कैलिफोर्निया, यू एस ए

7. **डॉ. गंगा प्रसाद शर्मा 'गुणशेखर'**
   साहित्य शिरोमणि
   पूर्व प्रोफ़ेसर (हिन्दी विभाग)
   ग्वांगडोंग यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज, चीन, ग्वांगडोंग, गुआंगझोउ, बाईयुन, चीन

8. **श्री. बी. एल. आच्छा**
   पूर्व प्राध्यापक एवं शिक्षाविद्
   उच्च शिक्षा विभाग, मध्य प्रदेश शासन

9. **डॉ. वेदप्रकाश सिंह**
   सहा. प्रोफ़ेसर (हिन्दी विभाग)
   ओसाका विश्वविद्यालय, जापान

10. **डॉ. रीना सिंह**
    असिस्टेंट प्रोफ़ेसर
    आर. के. तलरेजा महाविद्यालय, उल्हासनगर, जिला थाने, महाराष्ट्र

* सभी पद अवैतनिक हैं।

गोरैया की पुकार

डॉ राम गोपाल भारती

जंगल,पर्वत और पेड़ों को काट
रहे हो क्यों भैय्या।
मेरे बच्चे कहां रहेंगे ,पूछ रही है
गोरैया ।
तेज धूप में पंख जले तो ,छांव
कहां से पाऊंगी
जल के बिना मुंडेर छतों पर
प्यासी ही मर जाऊंगी
अब किलकारी मार के बच्चे
किसके पीछे दौड़ेंगे
कैसे बहलाओगे उनको नजर
नहीं जब आऊंगी
निसदिन मेरी राह तकेगी बच्चों
के संग संग मैय्या।
मेरे बच्चे कहां रहेंगे ,पूछ रही है
गोरैया ।

कविता सुनने के लिए ऊपर के
लाल बटन पर क्लिक करें

इस अंक में ....

कविताएँ

♦ औरत माँ औरत, ज्ञानी बूंद-विषकन्या बन जाओ..12-15

कमलेश बख्शी

♦ सूत्र, अब और नहीं, टूटना..16-20

प्रेम रंजन अनिमेष

♦ प्रेम की पराकाष्ठा : पुरुरवा एवं उर्वशी...............................21-23

डॉ सरोज गुप्ता

♦ कठिनाइयों से जूझता रहता...24

श्रीमती रत्ना पांडे

♦ नेता तुम भी बन सकते हो, मीडिया की मजबूरी...................25-27

डॉ. प्रवीण चंद्र बिष्ट

♦ कलाकार से मुहब्बत 28-29

डॉ. करुणा पांडे

♦ मुझे अच्छा नही लगता...30

नम्रता रस्तोगी

♦ खुश नहीं हूँ मैं..31
गायत्री शर्मा
♦ तेरी चाहत दुनिया मेरी, तुम्हारा एहसास..........................32-34
कंचन सिंह 'सर्वरी'
♦ बेफिक्र अँदाज, उफ़ ये बेटियाँ..35-36
शमा परवीन
♦ पर्यावरण बचाएं..37-38
प्रियंका कृष्णकांत दूबे
♦ माँ, बाबा मेरे भगवान..39
खुशी वार्ष्णेय
♦ मैं बनफूल...40-41
अलका 'सोनी'
♦ चाह अंकुर की...42
प्रभाती मुंगराज (धनकानी)
♦ मेरी तनहाई...43
कोमल

कहानियाँ

♦ ढ़ाक के वही तीन पात..44-51

रामनगीना मौर्य

♦ जसिया..52-58

अंकित कुमार मिश्रा

लघु कथाएं

♦ संयोग..59-61

जितेन्द्र 'कबीर'

♦ बर्थडे विश 62-63

टीकेश्वर सिन्हा 'गब्दीवाला'

पुस्तक समीक्षा

♦ मैं कैसे हँसू (कहानी संग्रह)..........लेखक: सुशांत सुप्रिय.......64-67

समीक्षक: - सुषमा मुनीन्द्र

अनुवाद

♦ आगंतुक........(फ़्रांसीसी कहानी का हिंदी अनुवाद)............68-83
अनुवाद : सुशांत सुप्रिय

संस्मरण

♦ जीवित बचे रह जाने का रहस्य..................................84-92
डॉ. गंगा प्रसाद शर्मा 'गुणशेखर'

शोध-आलेख

♦ समकालीन हिंदी कविता में वसंत 93-96
बी. एल. आच्छा

♦ देश का सम्मान घायल हो न जाये 97-105
डॉ. उमेश चंद्र शुक्ल

- भक्ति आन्दोलन और संत साहित्य 106-120
  दिनेश कुमार गुप्ता
- पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्री विमर्श............................121-125
  सुरभी बंसल
- नए सांस्कृतिक परिवेश का आईना: नव-वामपंथी कविता..126-138
  सैजू के

"शिक्षा की जड़ें कड़वी होती हैं परन्तु फल मीठा होता है।" -अरस्तु

सम्पादकीय

पिछले वर्ष कोरोना वायरस की भयावहता ने पूरे संसार को ऊहापोह की स्थिति में में डाल दिया था लेकिन जैसे ही इस वायरस का असर कम हुआ हम इस बात से निश्चिन्त हो गए थे कि यह भयानक वायरस धीरे-धीरे समाप्त हो रहा। जैसे ही हम नये वर्ष प्रवेश हुए हमारे हृदयों में आशा की किरण उत्पन्न होने लगी थी कि हमने इस बीमारी से मुक्ति पा ली है। तभी पुन: इस भयंकर बीमारी ने अपना तांडव प्रारंभ कर दिया था जो कुछ पिछली बार नही हुआ वह इस नये वर्ष में प्रारंभ हो गया था।

पूरे विश्व में मौत ने अपना नंगा नाच प्रारंभ कर दिया था। देखते ही देखते अनेक विद्वान् साहित्यकार, लेखक, राजनेता, चिकित्सक, पत्रकार आदि काल के गाल में समाते चले गए। प्रत्येक व्यक्ति का मन पुन: एक अनदेखे-अनजाने भय से आक्रांत हो गया था। हर दिन हमें अपने प्रियजनों के खोने की जानकारी प्राप्त हो रही थी, जैसे ही हमारे मोबाइल की घंटी बजती थी, फोन उठाते हुए हमारा हृदय बैठ सा जाता था एक अनजान भय से हमारे शरीरों में कम्पन उत्पन्न होने लगती थी। इस बार वायरस ने हमारे देश के साथ-साथ अपने आपको सबसे शक्तिशाली कहने वाले देशों की अर्थव्यवस्था को तहस-नहस कर दिया था।

मानव सभ्यता का वर्षों का इतिहास रहा है कि उसने कभी भी संघर्षों से हार मानना नही सीखा। संसार के सभी देशों ने तांडव कर रहे कोरोना वायरस के खिलाफ अपनी जारी जंग को और अधिक त्वरित गति से लड़ना प्रारभ कर दिया। सभी देशों की यह जंग मानव जीवन में आशा की नयी किरण लेकर आयी। कोरोना योद्धाओं के साथ-साथ सभी नागरिकों ने इस कठिन घड़ी में आपने कर्तव्यों का पालन किया तभी तो जीत हमारे सामने दृष्टिगोचर हो रही।

हमें आशा है भविष्य में हम इस युद्ध पर पूर्ण रूप से विजय प्राप्त करके एक नवीन

प्रारम्भ करते हुए जो कुछ पीछे छूट गया है, खो गया अथवा जिस किसी भी प्रकार से हमने हानि उठाई है उसको परिपूर्ण करते हुए आगे की ओर गतिमान होंगे और अपने निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करेंगे।

मित्रों, इसी क्रम में **'ई-प्रदीप'** ऑनलाइन पत्रिका का द्वितीय अंक आपके सामने प्रस्तुत है, इस अंक में हमने आप जैसे विद्वान् लेखकों, साहित्यकारों से प्राप्त सुझावों के आधार पर अनेक सुधार करने के प्रयास किए हैं। पूर्व अंक का फॉण्ट छोटा था जिस कारण मोबाइल में पत्रिका पढने में समस्या उत्पन्न हो रही थी। हमनें इस अंक में फॉण्ट साइज़ को काफी बड़ा किया है। जिससे मोबाइल में पत्रिका सरलता से पढी जा सके। इसके अतिरिक्त भी हमने अन्य कई सुधर किये हैं। इस अंक में कविताएँ, कहानियाँ, लघु कथाएं, पुस्तक समीक्षाएं, अनुवाद, संस्मरण, शोध-आलेख को स्थान दिया गया है।

हमारा प्रयास है कि पत्रिका में हम प्रख्यात साहित्यकारों के साथ-साथ विद्यार्थियों, शोधार्थियों, नव लेखकों की रचनाओं को प्रकाशित कर उन्हें एक साहित्यिक मंच प्रदान करें। जिससे हमारे पाठक नवीन एवं प्रख्यात साहित्यकारों के साहित्य का रसास्वादन कर अपनी ज्ञान पिपासा को शांत कर सकें।

हमें आशा ही नही पूर्ण विश्वास भी है कि **'ई-प्रदीप'** ऑनलाइन पत्रिका का पाठक इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री से अवश्य ही लाभान्वित होगा। आपके सुझाव एवं प्रतिक्रिया हमारे प्रयास को और अधिक सबल बनते हुए पत्रिका को उत्तरोत्तर गतिशील करने में सार्थक होगें। हम आपके सुझावों एवं प्रतिक्रियाओं का हृदय से स्वागत करते हैं। आपके सुझाव एवं प्रतिक्रियाओं द्वारा हम समय-समय पर पत्रिका में सुधार करने के भरसक प्रयास करेंगे।

डॉ. राहुल उठवाल
सम्पादक

औरत माँ औरत

-कमलेश बख्शी

कमलेश बख्शी

जन्म- इटारसी (मध्यप्रदेश)

मातृभाषा - पंजाबी लेखन-हिंदी, अन्य भाषाएं - मराठी, गुजराती, पंजाबी, इंग्लिश भाषा का ज्ञान

प्रकाशित कृतियाँ- कच्चे पक्के रास्ते,(1980) सुरंग से बाहर, (1981) अंतहीन भटकन (1982) विधिचंद (1984) बाल उपन्यास, दिशा खोजती जिंदगियाँ(2000) सभी उपन्यास, क्यों कहूँगी सच कहूँगी (1979) नया मोड़ (1989) कब तक (1989), मर्यादा (2000) उखड़ा वृक्ष धरती से जुड़ा (2001), सावधान ब्रिज आइस्ड है (2002) सभी कहानी संग्रह, नील गगन ले (यात्रा वृत्तान्त), आकाशवाणी से कविता,कहानी, नाटकों का प्रसारण कई सालों तक हुआ।

लघुकथा संग्रह प्रकाशाधीन, एवं अन्य कहानी, कविता संग्रह प्रकाशाधीन 2021

पुरस्कार- सोवियत नारी मास्को से प्रकाशित पत्रिका में प्रकाशित कहानी "नया मोड़" वर्ष की श्रेष्ठ रचना के अंतर्गत पुरस्कृत(1980) प्रियदर्शिनी पुरस्कार श्री किशाराम लेखराज रुपानी मेमोरियल अवार्ड (हिंदी साहित्य) , राष्ट्रीय हिंदी सेवी सहस्त्राब्दी सम्मान दिल्ली में, संयोग कला मंच मुंबई का सम्मान। अन्य संस्थाओं से अनेक सम्मान प्राप्त हुए।

निवास स्थान- मुंबई, संप्रति- स्वतंत्र लेखन

मुझे कुछ कहना है
तंग आ गया हूँ यह सुनते
तुम्हारे जैसी औरत से
ये औरत कौन है
प्रसव पीडा भूल
मांस पिंड को
चिपकाए छाती से
लोरी गाती थी
ये औरत कौन है
वर्षों वर्षों कभी जागती
कभी चिंतित
जुटी रही निर्माण में
सुरज की पहली किरण
के साथ उठती देर रात
तक निपटाती काम
ये औरत कौन है
उंगली पकड चलना सिखाया
कलम थमाई धैर्य प्यार से
निस्वार्थ भाव से
अंकुर सींच सींच वृक्ष बनाया
अव्यक्त खुशी से
देखा बंधा सेहरा
आज सुन रही हूँ
तुम्हारी जैसी औरत
कानों पर रखा हाथ
गोली से लगे शब्द

चीरते चले गये कलेजा
वह तो पल भर ओझल
होता सह न पाती थी
यह न सह पाता
सामने आ जाना
हाड मांस का तन
बेजान परछाईं में
बदल गया
नि:शब्द बैठ गई कुर्सी पर
जान ही न पाई कब क्यों कैसे
माँ से वह बन गई औरत
बंगला तुम्हारे नाम किया
पेपर रखे हैं कबट में
यही चाहते थे न तुम
मुझे वृद्ध आश्रम जाना है
पडोसन गई है न
बहुत खुश है
फार्म भर दे दिया उसे
जा रही हूँ पहली को
यही कहना था।

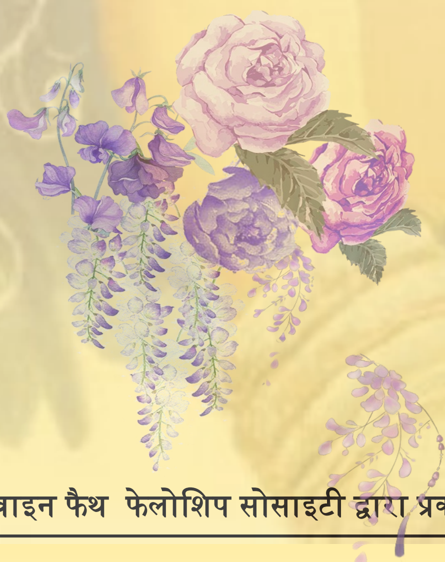

ज्ञानी बूंद - विषकन्या बन जाओ

-कमलेश बख्शी

आकाश झरा
कहीं तूफान
कहीं बाढ़ आई
आँखों पर बांधे पट्टी
कानून तरह
चश्मदीद गवाह
के चक्कर में पड़े बिना
गुनहगार बेगुनाह
सभी को लपेट
तहस नहस कर गई।

काश
पानी के साथ
ज्ञान बरसता
एक एक बूंद
ज्ञानी होती
सच्चे न्याय की प्रतीक
पूरे देश से चुन लेती
गुनाहगारों के हजूम को
और उनको भी
जिनकी मदद से
वे शरीफ़ बने रहते हैं।
वे कितने ही मुखौटे लगाये
हों।
कितने ही आलीशान भवन

में रहते हों।
कितने ही ऊंचे पद पर
कितने ही बड़े सत्ताधारी हो।
चहुं ओर अपने
पहरे रखते हों
तुम से बच न पायेंगे
तुम्हें गुनाह साबित
करने के लिये
चश्मदीद गवाह
नहीं चाहिए।
तुम्हारी अंतर्दृष्टि
खोज लेगी उन्हें।
बस ज्ञानी बूंदो
विष कन्यायें
बन जाओ।
एक एक के
गले लग जाओ।

देश बच जायेगा
आने वाली पीढ़ी
का सोच पायेगा।
इस महाभारत का
अलग इतिहास होगा
बिना हथियार
भ्रष्टाचारियों का नाश होगा।

सूत्र

-प्रेम रंजन अनिमेष

प्रेम रंजन अनिमेष
बचपन से ही साहित्य कला संगीत से जुड़ाव। सभी विधाओं में लेखन।
प्रकाशित कविता संग्रह : मिट्टी के फल, कोई नया समाचार, संगत, अँधेरे में अंताक्षरी, बिना मुँडेर की छत, **आने वाले संग्रह:** कुछ पत्र कुछ प्रमाणपत्र, प्रश्नकाल शून्यकाल, अवगुण सूत्र, नींद में नाच, माँ के साथ, नयी कवितावली, पाखी, प्रेमधुन, अंतरंग अनंतरंग, वृत्त अनंत, संक्रमण काल की कवितायें, कवितायें जिनसे झगड़ती हैं कहानियाँ, आदि
ईबुक : 'अच्छे आदमी की कवितायें' एवं 'अमराई' ईपुस्तक के रूप में वेब पर
संपर्क: एस 3/226, रिज़र्व बैंक अधिकारी आवास, गोकुलधाम, गोरेगाँव (पूर्व) (पूर्व), मुंबई 400063
ईमेल: premranjana-nimesh@gmail.com
दूरभाष: 9930453711

एक असफल प्रेमी
सफल कवि है आज
एक असफल कवि
आलोचक सयाना

अपने समय जगह अपनी
न बना सकने वाला खिलाड़ी
अब स्थापित एक प्रशिक्षक
और बुरी तरह पिटा अभिनेता
कामयाब निर्देशक निर्माता

नाकामियों से क्या डरना
असफलताओं का आदर करना
न जाने कौन सी असफलता
किधर मोड़ दे
कहीं और खोल दे
द्वार अवसर का

अगर कोई नष्ट पथभ्रष्ट सितारा
अपनी रोशनी लिये अब भी
आसमान में चमक सकता
फिर कोई भी कुछ कर सकता
और कब कैसे किस तरह
कौन कह सकता

एक असफल नागरिक
सफल राष्ट्राध्यक्ष कितना
किसी गौरवशाली देश का...!

सबक इतिहास के
कभी जिसे
याद रहे नहीं

इस समय वही
चर्चित भविष्यवक्ता

भुक्तभोगी भक्त दर-दर का ठुकराया
अब पुजारी भव्य मंदिर का
जो निराश जीवन से
दूसरों के लिए
प्रेरणादाता मसीहा

घर में स्त्रियों बच्चों पर
हाथ उठाने वाला
बाहर उठाये मशाल बदलाव का
कभी जिम्मेदारियों से भागने वाला
अभी अपनी जमात का अगुआ

एक हाथ से छिटकता
दूसरे में छलकता
सफलता का प्याला
पैमाना कामयाबी का
इसको कहा जाये क्या

वो डर कब का पीछे छूटा
दब कर रहने का दौर नहीं
कहने को आयी हरियाली

अब और नहीं

-प्रेम रंजन अनिमेष

जिनके मुँह में है कौर नहीं
जिनको रहने का ठौर नहीं
वे कह देंगे इक दिन उठ कर
अब और नहीं अब और नहीं

गिरवी जैसे हर इक धड़कन
साँसें भी मानो धरीं रहन
बँधुआ खेती मजदूरी यह
बंधक हो ज्यों सारा जीवन

यूँ बंधन जकड़न को ढोना
जीने का तो यह तौर नहीं

जो साँसों पर रखता पहरा
जिसके चेहरे पर है चेहरा
कहता करता अपने मन की
लेकिन सुनने में है बहरा

हो कुछ भी वो पर हो सकता
इस जनता का सिरमौर नहीं

सब सहते थे चुप रहते थे
बस साथ हवा के बहते थे
कितना भी अपने पर बीते
कुछ नहीं किसी से कहते थे

डिवाइन फैथ फेलोशिप सोसाइटी द्वारा प्रकाशित हिन्दी साहित्य की पत्रिका

टूटना

-प्रेम रंजन अनिमेष

दिल है तो
टूटेगा
और धागा भी
कहीं कभी
प्यार का

मगर तुम मत तोड़ो
तोड़ो भी
तो चटका कर नहीं
(रहीम को याद करो)

कि वक्त आये
मौका मिले
तो जुड़ सके
फिर से

टूटे उतना ही
जितना जरूरी
गूँथने पिरोने
रचने के लिए नया

जैसे टूटते पहाड़
नदियों के लिए
टूटते कगार
नयी मिट्टी के लिए

टूटती मिट्टी
बीज की खातिर
टूटते बंधन
आजादी की राह पर

टूटना हो भी
तो खुलने की तरह

जैसे आसमान खुलता
बरस कर
कलियाँ खुलतीं
महक कर
और जीवन नया
अपने खोल से
किलक चहक कर...

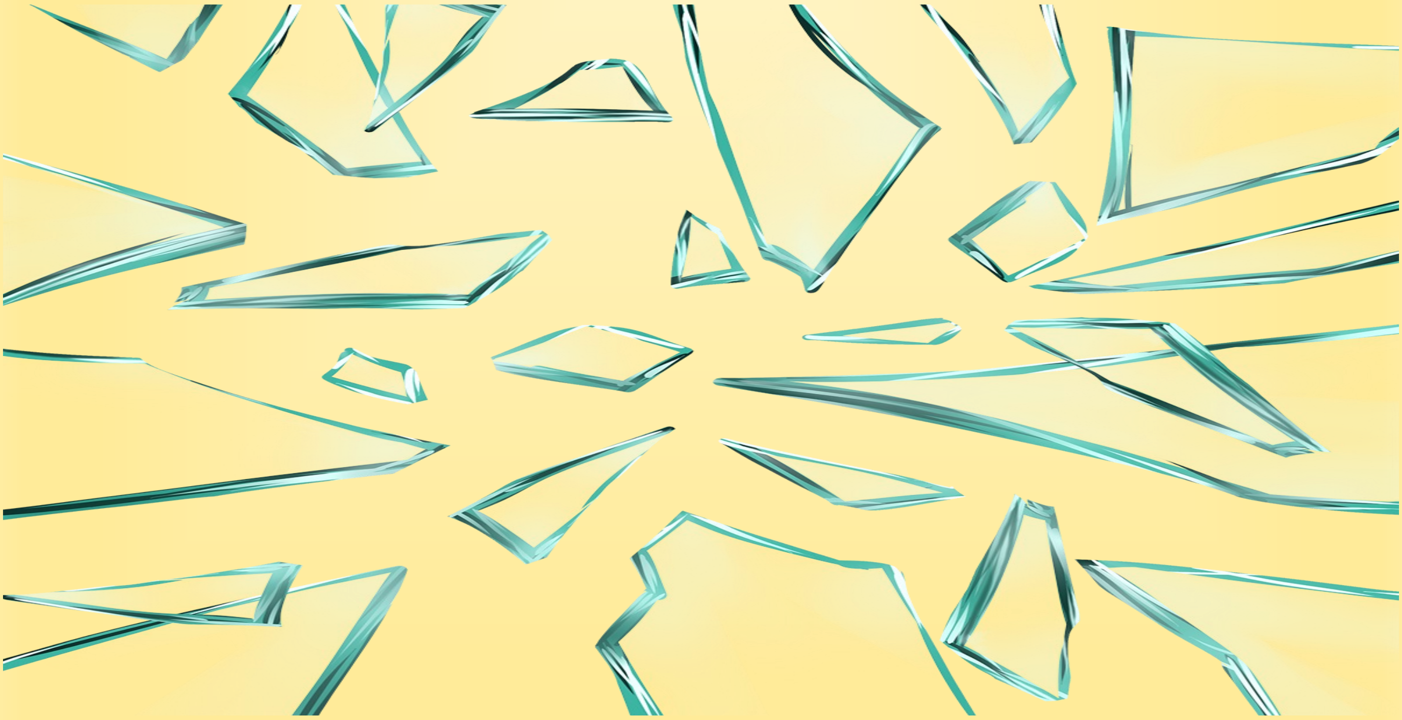

www.epradeep.com ई - प्रदीप अंक : 02 वर्ष : 01 अप्रैल-जून 2021
साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक ऑनलाइन त्रैमासिक - पत्रिका

प्रेम की पराकाष्ठा : पुरुरवा एवं उर्वशी

परिचय- ऋषिका उर्वशी

डॉ सरोज गुप्ता

ऋषिका उर्वशी स्वर्ग की विख्यात अप्सरा जो देवत्व और ऋषित्व से सम्पन्न रही। मत्स्य पुराण के अनुसार उर्वशी पूर्वजन्म में आभीर कन्या थी। फिर इसका जन्म नारायण के उरु भाग से हुआ। उर्वशी को बद्रिकाश्रम में पुष्पचयन करते देख मित्र-वरुण का वीर्य स्खलित हुआ जिससे अगस्त्य और वशिष्ठ जन्मे। गंधर्वराज चंद्र के पुत्र बुध के आत्मज तथा बुद्धिस्वरुपिणी इला के पुत्र पुरुरवा से प्रेम- प्रणय कथा तत्पश्चात् उर्वशी - पुरुरवा वियोग की कथा प्रसिद्ध है। उर्वशी अप्सरा को ऋषित्व के साथ साथ देवत्व प्राप्त है।

दिग-दिगंत में है प्रतिष्ठित,
रुपसी अप्सरा ऋषिका उर्वशी

इंद्रलोक की परी उर्वशी, देवत्व ऋषित्व सम्पन्न,
सागर की है आत्मजा, मानसिक तनया श्रीमन्नारायण।
अपूर्व सौंदर्य सौदामिनी, भूमा की विराट ऐश्वर्यसृष्टि,
चिंतन की लहरों के जैसी किरणोज्वल रहस्य दृष्टि।
दिग-दिगंत में है प्रतिष्ठ रुपसी अप्सरा उर्वशी--

इंद्र सभा की शोभा, प्रेम कला की दिव्य चेतना ,
नारद मुख से सुनती पुरुरवा चंद्रवंशीय की महिमा ।
अतीन्द्रिय धरातल का करती स्पर्श, उत्कट आतुरता,

डिवाइन फैथ फेलोशिप सोसाइटी द्वारा प्रकाशित हिन्दी साहित्य की पत्रिका

रुप में डूब,अरुप का कर संधान, सौन्दर्य मोहकता।
अप्रतिम, अपूर्व है रुपसी अप्सरा, ऋषिका उर्वशी --

प्राणों में सिहरन पुलक, प्रफुल्लित मोहवश आकृष्ट,
संयम-मर्यादा शर्तों पर झटपट गंधर्व विवाह बंधन युक्त ।
तरंगायित देह ,मन के समुद्र में लहराती ले दुर्गम समाधि,
इंद्र व्यथित, षड्यंत्रों के रचे जाल,पलित मेष किये अपहरित ,
मेष ढूंढते, शर्त भूलते हाथों से विलग हुई उर्वशी--

वज्रादपि कठोर कुसमादि कोमल इंद्र से अभिशप्त ,
तेज से अपने अन्तरिक्ष को भर देने वाली हुई विलग।
चला गया जो उसे ढूंढने, पुरुरवा फिरता मुक्त गगन,
सम्बन्धों की डोर टूट गई, लगा न पल भर क्षण।
इच्छा हुई विस्तरित मही से उड़ी आकाश उर्वशी--

करी प्रतिज्ञा भंग, सुनी न एक, अनसुनी करते रहे,
मैं वचनों से विवश, कामना वज्रपात, दुःख करते रहे।
अपराधी हो तुम, विरह दण्ड मैं भी भोग रही हूँ,
विधाता की लीला है क्या? सबकुछ देख रही हूँ।
वायु सी दुष्प्राप्य, ऊषा सम चलती उर्वशी--

मैं हूँ तेरे पुत्र की माँ, जल्दी ही लौटूंगी स्वर्गागामी,
गिरो मत, हो मृत्युवरण से मुक्त, बनो आत्मिक ऊर्ध्वगामी।
अमरत्व विविध रुप वाली मैं चार वर्ष संगसाथ घूमी हूँ,
घृत का किया आस्वाद, कामाध्यात्म परितृप्त रही हूँ।
नवनव स्फुरण द्वंद्वों से सर्वथा मुक्त उर्वशी--

स्मरण करो जन्मजीवन को, देवों द्वारा प्रदत्त शक्तियां,
अतिविशिष्ट तुमको मान नदियों ने पोषित बढ़ा किया।
हे इला! पुत्र तू श्रेष्ठ कर्म, हवि यज्ञ यजन सम्पन्न करो,
पुरुरवा नरश्रेष्ठ मेरी सुन, तू है नहीं साधारण स्मरण करो।
तेरा जन्म दिव्य तेरे कर्म दिव्य कहती उर्वशी---

श्री सम्पन्न रहो सर्वदा, ऊर्जस्वत यश सम्मान प्राप्त करो,
गंधर्वराज पिता चंद्र, बुद्धि स्वरुपिणी माँ इला का नाम करो।
आयु पुत्र को पाकर वीरभाव से देवत्व तृष्णा शांत करो,
दुष्टों का करो दलन क्षात्रधर्म तेजस्वरुप का मान करो।
भक्ति अध्यात्म दर्शन की त्रिवेणी उर्वशी

डॉ सरोज गुप्ता- 20 जुलाई को बड़ागांव, जिल- झांसी में जन्म। पिता श्री स्व. बुद्धिप्रकाश सरावगी इतिहास विशेषज्ञ, मर्मज्ञ विद्वान, धर्म, दर्शन, अध्यात्म में रुचि सम्पन्न। मातृभाषा के साथ बुन्देलखण्ड के साहित्य और संस्कृति के प्रति खासा अनुराग। अपने रचनाकर्म और प्राध्यापकीय कार्य के दौरान राष्ट्रीय सेवा योजना की कार्यक्रम अधिकारी तत्पश्चात राष्ट्रीय कैडेट कोर की कम्पनी कमाण्डर के रुप में बारह वर्षों तक समर्पित भाव से सक्रिय। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, भोपाल व दिल्ली के महत्वपूर्ण माइनर, मेजर प्रोजेक्ट का सफलतापूर्वक निर्वहन। राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय शोध संगोष्ठियों,वेबिनारों में संयोजक, व सचिव के रूप में श्रेष्ठ संयोजन। प्रामाणिक वृहद बुंदेली शब्दकोश- उत्तर प्रदेश भाषा संस्थान लखनऊ द्वारा प्रकाशित। साहित्य मण्डल श्रीनाथद्वारा, बुंदेली वैभव, हिन्दी लेखिका संघ भोपाल, तुलसी मानस प्रतिष्ठान भोपाल, साहित्यांचल भीलवाड़ा सहित कई गरिमामय मंचों से सम्मानित। सम्प्रति- अध्यक्ष हिन्दी विभाग पं दीनदयाल उपाध्याय शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय सागर म. प्र., पिन - 470001

कठिनाइयों से जूझता रहता

श्रीमती रत्ना पांडे

कठिनाइयों से जूझता, मुश्किलों से होता रहता है मिलन,
संघर्षों के बीच घिरा रहता है, हमेशा ही सत्य का जीवन,
सत्य को दर्शाने के लिए, यदि पास में नहीं कोई भी सबूत,
कितनी भी सच्चाई लिए हो, पर होता है सब फ़िर फिज़ूल,
राजा हरिश्चंद्र भी, सत्य की चुनौतियों से बार-बार थे गुज़रे,
जीत गए हर बार किंतु आजीवन संघर्षों के बीच रहे उलझे,
संघर्ष बाँहें पसारे हरदम ही, सत्य के समक्ष खड़ा होता है,
कहता है पार कर ले मुझे, तेरी जीत ही मेरा लक्ष्य होता है,
क्या करूँ मजबूर हूँ, नहीं चाहता मैं कभी तेरा रास्ता रोकूँ,
जानता हूँ अच्छाइयाँ तेरी, भला क्यों मैं तुझे नाहक ही टोकूँ,
पर मैं भी कठपुतली बन जाता हूँ, तेरे दुश्मनों के हाथों की,
नचाते हैं मुझे इशारों पर, इच्छा होती उनकी तुझे हराने की,
पर तू घबराना नहीं, मैं स्वयं ही तुझसे हार जाना चाहता हूँ,
असत्य को नहीं, मैं जीत का सेहरा तुझे ही पहनाना चाहता हूँ,
तू हिम्मत रख, निरंतर मुझसे यूँ ही मुठभेड़ कर लड़ता चल,
कदमों में तेरे गिर जाऊँगा मैं, बस तू असत्य को परास्त कर।

श्रीमती रत्ना पांडे
डी/5,शिवनेरी साइटी, वासना ज़कात नाके के पास, अर्थ अर्टिका काम्प्लेक्स के सामने, वासना रोड, वडोदरा (गुजरात)-390007,
ई-मेल—ratna.o.pandey@gmail.com

डिवाइन फैथ फेलोशिप सोसाइटी द्वारा प्रकाशित हिन्दी साहित्य की पत्रिका

नेता तुम भी बन सकते हो

डॉ. प्रवीण चंद्र बिष्ट

डॉ. प्रवीण चंद्र बिष्ट

रामनारायण रुइया स्वायत्त महाविद्यालय, माटुंगा, मुंबई के हिन्दी विभागाध्यक्ष हैं। उन्हें मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई ने शोध-निर्देशक के रूप में नियुक्त किया हैं। वे प्रसिद्ध अर्धवार्षिक साहित्यिक जर्नल 'समीचीन', मुंबई (यू. जी. सी. केयर लिस्ट में सम्मिलित) के संयुक्त-संपादक हैं। उनकी पुस्तक शैलेश मटियानी के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, नमन प्रकाशन, दिल्ली (2013) प्रकाशित हो चुकी है। उनके द्वारा कई पुस्तकें सम्पादित की जा चुकी है जिनमें रचनाधर्मी देवेश ठाकुर, नमन प्रकाशन, दिल्ली (2019) व आधुनिक हिन्दी साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि, नमन प्रकाशन, दिल्ली (2019) प्रमुख हैं। उनके विविध पुस्तकों व पत्र-पत्रिकाओं में लगभग चालीस से अधिक शोध-आलेख प्रकाशित हो चुके हैं।

सम्पर्क- दूरध्वनी: +91-8850569910, अणुमेल: prvinchandra@gmail.com

आजकल राजनीति ने नया रूप धरा है
विकास की बात लेन्स से ढूंढने पर भी
दूर-दूर तक दिखाई नहीं देती
न नेता इसे जरूरी मानते हैं
न श्रोता जरूरी समझते हैं

यदि राजनीति में स्थान बनाना हो
तो, विपक्षी की पूरी कुंडली निकल लो
चटकारे ले-लेकर हर सभा में
उसके एक-एक ऐब गिनाते चलो
और अपनी जीत निश्चित करो

यदि इससे भी काम न चले तो
क्षेत्र विशेष का अवलोकन कर
जाति व धर्म के आधार पर
अपना प्रत्याशी खड़ा कर लो
तो, आपकी जीत निश्चित है

महाअस्त्र एक और धरा पर
राम-रहीम की बातें कर लो
या, गांधी, अंबेडकर, तिलक आदि की
विशेषताओं को गिनवाकर
सिंहासन, हित अपने कर लो

या फिर लोगों में चर्चित इक
अभिनेता या अभिनेत्री को
अथवा कोई बाहूबली को
प्रत्याशी बन खड़ा करो तुम
जीत तुम्हारी तब निश्चित है ।

सरल तरीका राजनीति का
राजनेता ही बतलाते हैं
संकेत वे सारे कर जाते हैं
एक अगर गुण इनमें से है
नेता तुम भी बन सकते हो
नेता तुम भी बन सकते हो

मीडिया की मजबूरी

डॉ. प्रवीण चंद्र बिष्ट

कोरोना पिछले साल से
मानव को छल रहा है
इसने,
विश्व की एक बड़ी आबादी को
समय से पहले
जीवन के चरम तक पहुँचा दिया।

उस दौरान हमारी मीडिया
चटकारे ले-लेकर बिगड़ते स्वास्थ्य
पार्किंग के ताबूतों व श्मशान की
लपटों को दिखाने की होड़ में लगा हुआ था
इस दौरान इसका क्या यही धर्म था ?

सामान्य जन भय व आतंक से
घर में कैद तो था ही
लेकिन मीडिया के मानसिक आतंक से
और भी भयभीत हो, कभी पत्नी पर झल्लाता
तो कभी छोटे-छोटे मासूम बच्चों पर
तब इसका क्या यही कर्म था ?

अब एक बार फिर
श्मशान की आग दिखाकर
अथवा ताबूतों को गिनवाकर
टी आर पी बटोरने को
दर-दर भटकने के लिए मजबूर हैं

काश मीडिया सभाओं व प्रचार-प्रसार के लिए
आयोजित कार्यक्रमों से पूर्व
भविष्य के भयावह आँकडों का आकलन कर पाता
या मेलों आदि से उत्पन्न होने वाले
आँकडों को भाँप पाता
समय रहते जनता व सरकार को ....

डिवाइन फैथ फेलोशिप सोसाइटी द्वारा प्रकाशित हिन्दी साहित्य की पत्रिका

कलाकार से मुहब्बत

डॉ. करुणा पांडे

एक बार महसूस हुआ कि मोहब्बत की घटना होगी,
इस मोहब्बत में स्वर्ग के सुख की कल्पना होगी।
इस सुख में एक दोजख जैसा दर्द भी होगा,
जिसमें से मुझे उमर भर गुजरना होगा।
मैं अपने जिस्म के होठों से तुम्हारे जिस्म
को एक साँस में पीना चाहती थी,
नरक में जल रहे भावों के साथ, सारे स्वर्ग को
अपनी बाँहों में समेट लेना चाहती थी।
पर क्या कभी मुहब्बत का दर्द यूँ कम हो पाया है
इनसान ने जो भी सोचा वह कभी क्या पाया है।
स्वर्ग मेरी बाँहों में था, पर पाँव हवा में लटक रहे थे,
दिल में एक दर्द था और पाँव दोजख की आग में जल रहे थे।
मैंने उस से मुहब्बत की जो वक्त के साथ भाग रहा था,
मैं उसकी मुहब्बत में कैद थी, वह जीवन संवार रहा था।
उसने कहा - 'मेरे पास वक्त नहीं मुहब्बत के लिए- कैसे करूँ'?
मैंने कहा- 'मैं अपनी मुहब्बत और वक्त के लिए क्या करूँ'?
उत्तर उसके पास भी न था, उत्तर मेरे पास भी न था,
पर उत्तर न होना ही तो, प्रश्न के अस्तित्व का प्रमाण न था,
मैंने मुहब्बत के एसिड को पी कर खुद को बंधन मुक्त किया
पर मैं भूल गयी - मेरा अस्तित्व केवल मांस का बुत नहीं

रंगों और रेखाओं का बुत था,
जो अभी भी बाकी है और कलाकार की कला में शामिल है।
जब मेरे झूलते काले मांस के होंठ,
जिंदगी से मिलनेवाली पीड़ा से हँस रहे थे
तब जवान और लाल, मेरे कैनवस के होंठ

डॉ. करुणा पांडे -शिक्षाविद, मनोविज्ञानी, लेखिका बी.एड.विभाग से सेवानिवृत। वह अब पूर्ण रूप से साहित्य और समाज को समर्पित हैं। प्रकाशन– यथार्थ की चादर, अंतहीन तलाश और मंडी उपन्यास, वक्त की करवटें, कोहरे में किलकारी, उपकार का दंश, अधूरा कैनवास, अँधेरे में खिली धूप -कहानी संग्रह, जिज्ञासु बच्चे, और चम्पा जीत गयी, गुरु दक्षिण- बाल कहानी संग्रह, दोहा संग्रह, अभिनव संग्रह, जिन्दगी मूक सबकी कहानी रही, संवेदना से वेदना तक कविता संग्रह, एक निबंध संग्रह, एक रेखाचित्र, रामचरितमानस पर शोधग्रन्थ, विलोम शब्द कोष, एक बच्चे की डायरी -मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, उत्तराखंड के संस्कार गीतों पर पुस्तक, उत्तराखंड की लोक कला– एपण, उत्तराखंड की लोककथायें, विलुप्त होते उत्तराखंड के लोकगीतों पर पुस्तक, धृतराष्ट्र के झरोखों से (लघु कथा संग्रह), जगद्गुरु आदि शंकराचार्य, चुलबुला बचपन बाल गीत सात पुस्तकों का सम्पादन। निरंतर पत्र पत्रिकाओं में लेखन, दूरदर्शन और आकाशवाणी से सम्बद्ध। अनेक राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सम्मानों से अलंकृत। **निवास-** 2/62-सी, विशालखंड, गोमतीनगर, लखनऊ 226010, ईमेल : karunapande15@gmail.com

मुझे अच्छा नही लगता

नम्रता रस्तोगी

कहने को तो एक उम्र गुजारी है हमनें
एक दूसरे के साथ
मगर तुम्हारी बेरुखी तुम्हारा बेपरवाह अंदाज़
मुझे अच्छा नही लगता
यूं तो हर कदम पर हैं हम एक दूसरे के साथ
पर साथ होकर भी तुम्हारे न होने का
वो एहसास
मुझे अच्छा नही लगता
तुम्हारे माथे की शिकन छीन लेती है मेरा
चैनो करार
मेरी उदासी पर तुम्हारा वो
लापरवाह बर्ताव
मुझे अच्छा नहीं लगता
ये घर हम से है,ये घर हम दोनों का आशियाना है
मगर जरा सी नोक झोक पर
तुम्हारा ये मेरा घर है
कहकर छीन लेना मेरा विश्वास
मुझे अच्छा नहीं लगता
तुम बाहर से थक कर आते हो
मैं दिन भर घर मे जाने क्या करती रहती हूँ
तुम्हारा यूँ बात बे बात
रुसवा करने का अंदाज़
मुझे अच्छा नहीं लगता!!!

नम्रता रस्तोगी

पत्नी -श्री आशुतोष रस्तोगी

डायरेक्टर - एन एस मिंट प्रोडक्ट प्राइवेट लिमिटेड

प्रेसिडेंट -इनरव्हील क्लब संभल

शौक -कविता लेखन, बागवानी, संगीत, किताबें पढ़ना

खुश नहीं हूँ मैं।

गायत्री शर्मा

हाँ खुश हूँ मैं...
देख कर देश का यह हाल अगर खुश होना चाहिए।
देख जनता को बेहाल अगर खुश होना चाहिए।
देख अमीरों का यह जंजाल अगर खुश होना चाहिए।
तो हाँ बेशक खुश हूँ मैं।
देख खत्म होते भाईचारे को अगर खुश होना चाहिए।
देख छोटे व्यापारी की मिटती पहचान अगर खुश होना चाहिए।
देख रिश्तों में मीलो की दूरी अगर खुश होना चाहिए।
तो हां ...बेशक खुश हूँ मैं।

गायत्री शर्मा

आप आइजैक न्यूटन ग्लोबल विद्यालय, वसई पश्चिम में हिंदी अध्यापिका के रूप में कार्यरत हैं। सामना पत्रिका में आपकी कविताओं का लगातार प्रकाशन हो रहा हैं। कई कविता प्रतियोगिताओं और भाषण प्रतियोगिताओ में आप समय समय पर पुरस्कृत होती रहीं है। आपकी रचना में देश के चल रहे हालातों को लेकर चिंता की परछाई स्पष्ट दिखाई देती है।

तेरी चाहत दुनिया मेरी

कंचन सिंह 'सर्वरी'

सोना चाँदी महल अटारी
ना मैंने कुछ और कमाया रे।
तेरी चाहत दुनिया मेरी
सच में सब कुछ तुझमें पाया रे।।

तुम आये तो जीवन लौटा
मैंने जीवन पाया रे।।
जैसे मेघा बरसे बिन सावन के
सावन आया रे।।

धीमे धीमे क़दमों से चलकर
जब तुम पास आये।
थमीं सांस जीवन की, सांसों में
फिर सांस आये।।

तेरे शब्दों की मधुशाला में
मैंने प्रेम भरा रसपान किया।
मन तृप्त हुआ रस बूँदों से
यूँ दमक उठी है काया रे।।

तुझको गले लगाकर
जन्मों की प्यास बुझी मानो
निस्तेज बदन में
मन ने ले अंगड़ाई मानों।

सागर के अंतस में जैसे मोती
तेरी बाहों में हम ऐसे
शर्वरी का मन तो चाँद हुआ
नयनों में तेरी छाया रे।।

तुम्हारा एहसास

कंचन सिंह 'सर्वरी'

याद है मुझे वो मुलाकात
प्रथम मिलन की वो हँसी शाम
जब मेरे मन के आँगन में
तुमनें रखे थे हौले से अपने पांव

तुमने भावों से निभाये
स्वागत शिष्टाचार
तुमनें दिया हमे नेह स्नेह
बहुत सारा प्यार

हम एक दूसरे से अंजान थे
फिर भी इतना अपना पन
तुम्हारे हाथों का स्पर्श
मेरे मन को झंकृत करता

मेरे मन में उठे सवालों का
जैसे जबाब थे तुम
मै तुम्हारी आँखों में
एक टक देखती रही

तुम्हारी मुस्कान की वो झलक
जो आज भी मेरे
मन मस्तिष्क पर

जिसकी स्मृति मात्र से
मैं अपने तमाम ग़म को
तुम्हारे एहसास के शब्दों से तमाम कर देती हूँ
उन लम्हों में मैं खो जाती हूँ
जब भी तुम्हें सोचती हूँ
तुम्हारे प्रेम के सागर में सर्वरी
मै अविरल डूब जाती हूँ !

कंचन सिंह 'सर्वरी'

कंचन सिंह कला के क्षेत्र में स्नातकोत्तर हैं और उन्होंने शिक्षा में स्नातकोत्तर किया है। वह मुंबई की निवासी हैं और मूल रूप से अपनी संस्कृति और परंपरा से समृद्ध भूमि, उत्तर प्रदेश से सम्बन्ध रखती हैं। अध्यापन के अतिरिक्त उन्होंने लेखन, नृत्य, गायन और अपना खुद का गीत बनाने में भी हाथ आजमाया है। उनका मानना है कि जीवन तलाशने के लिए बहुत छोटा है, इसलिए आपको खोज करना बंद नहीं करना चाहिए। **सम्पर्क- दूरध्वनि** -9136340363

ईमेल-singh.ckanchan@gmail.com

बेफिक्र अँदाज

शमा परवीन

बेफिक्र अँदाज,
खुशियों की बरसात,
सुहाना सफ़र वाचाल डगर,
याद है मस्ती बचपन की।

नादान अल्फाज़,
ख़ूबसूरत कमाल,
चंचल चितवन,
याद है मस्ती बचपन की ।

खेलों की लगन,
दोस्तो की कतार,
मौसम की बहार,
याद है मस्ती बचपन की।

मासूम ज़हन,
अपनों के संग,
शरारतो का दौर,
याद है मस्ती बचपन की।

नाव में पानी या,
पानी में जहाज थी,
"शमा" के नाम की,
याद है मस्ती बचपन की।

शमा परवीन

जन्म - 15 अप्रैल (बहराइच, उत्तर प्रदेश) **गुरु** - रश्मि प्रभाकर, पिता- अशफ़ाक अहमद, माता- मुस्तकिमा उर्फ अंजुम फातिमा, पति- मोहम्मद अल्ताफ शिक्षा- एम.ए., एन.टी.टी., डी.एल.एड., बाम्बे आर्ट, डिप्लोमा कम्प्यूटर, पता - बहराइच, उत्तर प्रदेश **सम्प्रति**- अध्यापिका, कवयित्री, लेखिका, भारतीय शिक्षा ट्रस्ट समिति की सदस्य, विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से समाज सेवा कार्य में रूचि। प्रकाशित रचनाएँ/ कृति - विभिन्न दैनिक समाचार पत्र पत्रिकाओं में कविता और लघुकथाओं का प्रकाशन। कविता, उपन्यास, कहानी, और नाटक पढ़ने में रूचि ।

उफ़ ये बेटियाँ

शमा परवीन

उफ़ ये बेटियाँ।
"माँ" मोहब्बत की मिशाल हैं,
सारे जहाँ में जिसका नाम है,
मर्तबा कमाल हैं,
हैं वो बुलन्द बेटियाँ,
उफ़ ये बेटियाँ।
राक्षसों की निगाह में,
जब कभी चढ़ी बेटियाँ,
तबाह हुई, भस्म हुई,
सहम गई बेटियाँ,
उफ़ ये बेटियाँ।
गुजारिश यही हैं सभी से,
उरूज मिले,तरक्की करे बेटियाँ,
खिलखिलाये ,चहके, महके,
मुसकुराये, मुबारक ये बेटियाँ ,
उफ़ ये बेटियाँ।
अब न जले कहीं बेटियाँ,
दहेज़ की भेंट न चढ़े बेटियाँ,
खुल कर जियें ये बेटियाँ,
देश का मान हैं ये बेटियाँ,
मत कुचलो इन्हे,
जीवन हैं ये बेटियाँ,
उफ़ ये बेटियाँ।

डिवाइन फैथ फेलोशिप सोसाइटी द्वारा प्रकाशित हिन्दी साहित्य की पत्रिका

पर्यावरण बचाएं

प्रियंका कृष्णकांत दूबे

ये कटते वृक्ष, सूखती नदियां,
टूटते पर्वत, सिमटता सागर।
एक रोज खत्म हो जाएंगे,
ओ नासमझ मनुज प्रकृति से दूरी
सब जीव नष्ट हो जाएंगे।

तरु जो सघन छाया देता,
खग,चौपाया पनाह में रखता।
फल,फूल, हवा उम्र भर देता,
कुछ भी स्वयं नहीं हो रखता।

नदिया जो अनाज है देती,
मिट्टी सींच फसल भर देती।
तपस, माटी करे जीव सुरक्षा,
नीरज दे जो करती रक्षा।

प्रकृति की है तू कृति,
पर तूने इसकी बदली आकृति।
लोभ में आकर तूने मानव,
कुदरत पर ही ढाई विपत्ति।

आज समय का घूमा पहिया,
हे चारदीवारी तेरी छंइयां।
पशु पक्षी स्वच्छंद फिरते हैं,
पर मानव तेरी समस्या बिकट है।

गुमान जमीनों पर था तुझको,
देख मनुज लाशों का मेला ।
जब हवा ने अपनी कीमत मांगी
कुछ कर न सका तू पड़ा अकेला।

अब मानुष अपने चक्षु खोलो,
पर्यावरण से अपना नाता जोड़ो।

फिर से सहेज कर रख लो प्रकृति,
आने वाले कल के लिए,
फिर अपने अपनों के लिए।

बदलो अब तस्वीर जहाँ की,
सुंदर सा एक दृश्य बनाओ।
वृक्षारोपण से सजा दो सृष्टि,
भू, जल, जन, जीवन, पर्यावरण बचाओ।

प्रियंका कृष्णकांत दूबे
पता :- अरिहंत दर्शन विंग बी,306,शिलफाटा रोड, खोपोली,
रायगढ़, महाराष्ट्र, 410203
दूरध्वनि - 8796464279
ईमेल - priyadubey98pd21031993@gmail.com

माँ, बाबा मेरे भगवान

खुशी वार्ष्णेय

किसी ने मुझसे पूछा भगवान कौन है
मैंने जवाब दिया_
अपनी खुशियों को दबाकर मेरे सपने सजाना,
अपने आज को खोकर मेरे आने वाले कल को बनाना।
खुद न सोकर मुझे सुकून भरी नींद सुलाना,
लाख दु:ख होते हुए सिर्फ मेंरे लिए मुस्कुराना।
मेरी राहों में फूल बिछाने के किए अपनी राहों में कांटे बोना,
मेरी एक मुस्कुराहट के लिए अपना सब कुछ खोना।
मेरी हर परेशानी में 'हम हैं न साथ' ये कहना,
मेरे सामने आने वाली हर मुसीबत को अपने ऊपर लेना।
अर्थात मेरे मां, बाबा मेरे लिए तो वो ही भगवान है।
मेरे बाबा मेरा अभिमान है तो,
मेरी माँ मेरा स्वाभिमान हैं ।
ये दोनों मेरे बीते हुए कल, आज और आने वाले कल का खूबसूरत फरमान है,
बस इन्हीं से मैं हूँ और इनसे ही मेरी पहचान है।

खुशी वार्ष्णेय
विद्यार्थी, बी. ए., तृतीय वर्ष, हिंदी विभाग
जानकी देवी मेमोरियल महाविद्यालय, दिल्ली

मैं बनफूल

अलका 'सोनी'

उपवनों में खिले,
काट-छांटकर
कतारबद्ध किये
पुष्पों की छटा कभी
नहीं ला पाता मैं
अपने अंदर
माली के हाथों से
पड़ने वाली फुहारों से
भींज नहीं पाती
मेरी जड़ें
जितनी बार यहां
लगाया गया, उतनी बार
मुरझाता रहा

मेरी जड़ें पोषित होती हैं
सघन वनों की
मिट्टी में,
मेरी कोपलें पनपती है
बादलों की गर्जना और
बेतरतीब पड़ती बूंदों से

सूरज की तीखी किरणों के
प्रहार से फूटती हैं
मेरी कलियाँ,

अलका 'सोनी'
लेखिका व कवयित्री
बर्नपुर, पश्चिम बंगाल
C-1/4, रोड नम्बर-1,
रिवरसाइड टाऊनशिप
बर्नपुर, आसनसोल।
पश्चिम बंगाल।
पिन-713325.
ई मेल-
alka230414@gmail.com
व्हाट्सएप - 7797390251
सम्पर्क सूत्र - 7908651937

डिवाइन फैथ फेलोशिप सोसाइटी द्वारा प्रकाशित हिन्दी साहित्य की पत्रिका

प्रकृति के निर्मल
हाथों के दुलार से
पाता हूँ नवजीवन
राजभवनों की कृत्रिमता
नहीं भाती मुझे

सम्भ्रांत पुष्पों की
सुकुमारिता से कोसों दूर
निर्जन वनों में खिलकर
अपनी नैसर्गिकता में
खिलना, खिलखिलाना
कड़ी धूप, आंधियों में
अडिग खड़ा रहना
और फिर
मिल जाना उस
वन की मिट्टी में ......
यही नियति है मेरी
मैं बनफूल हूँ।

चाह अंकुर की

प्रभाती मुंगराज (धनकानी)

आज ! देखा मैंने गमले में
मिट्टी के घारौंदे से वो अंकुर
झांक रहा था।
था उल्लास मन में उसके भी,
होकर आतुर मन से,
आने को बाहर चुपके – चुपके
इस सृष्टि को वह ताक रहा था।
समझाया मैंने भी बहुत उसको
मत आना बाहर इस संसार में,
चक्रव्यूह है यहाँ बहुत ।
तुम भी !
फसकर रह जाओगे ।
फिर अभिमन्यु की तरह
तुम भी निकल न पाओगे ।
वह झल्लाया, कहा
मैं आऊँगा ! मैं आऊँगा !

प्रभाती मुंगराज (धनकानी)
(एम.फिल.) शोधार्थी, विद्यासागर विश्वविद्यालय, पश्चिम बंगाल
रैलपार साउथ धादका मोड़, आसनसोल जिला - बर्दवान,
पश्चिम बंगाल पिन - 713302
ई मेल - prabhatimungraj01@gamail.co

मेरी तनहाई

कोमल

कोमल
विद्यार्थी, बी. ए.,
तृतीय वर्ष, हिंदी विभाग
जानकी देवी मेमोरियल
महाविद्यालय, दिल्ली
विश्वविद्यालय, दिल्ली

अक्सर मैं लोगो की भीड़ में,
खुद को अकेला पाती हूँ
न जाने कौन-सा दर्द है
जो मै खुद से और सबसे छुपाती हूँ
चारो तरफ खुशियों का शोर है
पर मेरा मन न जाने किस ओर हैं
मैने लोगों को रातों मे सोते देखा है
पर उन्ही रातों मे मैने खुद को रोते देखा है
कल तक जिस अन्धेरे से मुझे डर लगता था
आज उसी अन्धेरे से मुझे प्यार हो गया हैं
रात की चाँदनी मे जो सुकून मिलता है
वो सुकून सूरज की चमक मे कहा मिलता है
आज फिर दिल चाहता है जी भर के रोना
न जाने क्या दिल नही चाहता है खोना
ज़िन्दगी की राह मे इतना आगे बढ़ आई हूँ
लगता है की मैं खुद को कही पीछे छोड़ आई हूँ
न जाने कौन-सा है मोड़
जो देगा मुझे मेरे पास छोड़
हँसती हूँ और दूसरों को भी हँसाती हूँ
पर खुद को कभी ढूँढ नहीं पाती हूँ।।

ढ़ाक के वही तीन पात

रामनगीना मौर्य

“भाई सज्जन कुमार! एक्चुवॅली तुम्हें पता ही नहीं कि तुम्हारी प्राब्लम क्या है? अब देखो! अभी जो साहब तुम्हें ये कागज देकर गये हैं, तुमने उनके साथ कैसा बर्ताव किया?”

“कैसा बर्ताव किया?”

“जब वो साहब यहाँ आकर खड़े हुए, और बॉस की उपलब्धता के बारे में पूछने लगे, तो तुम सोफे पर दोनों टांग पसारे, लेटे-लेटे ही फुरट-चाट खाते, उन्हें बॉस के लंच पर होने के बारे में बताते रहे। पता नहीं आने वाला कौन है? किस हैसियत का है? कम-अज-कम इतनी कॅर्टसी तो होनी ही चाहिए कि तुम्हारे यहाँ कोई बाहरी सज्जन आयें तो उठ कर बैठ जाओ।”

“अरे! सहाय, तुम्हें कुछ पता भी है? यहाँ आने वालों, बॉस से मिलने वालों का दिन-भर तांता लगा रहता है। पूरे दिन कुर्सी पर बैठे-बैठे देह अकड़ जाती है। अब क्या लंच-टाइम में भी आराम न करूँ ? फिर, उन्हें भी पता होना चाहिए कि ये लंच-टाइम है? बॉस इस समय रिटायरिंग-रूम में आराम फरमा रहे होंगे। उनके स्टाफ के लोग भी आराम कर रहे होंगे।”

“ये तो उनके हाव-भाव से भी लग रहा था, और उन्होंने महसूस भी किया कि वो गलत टाइम पर आ गये हैं, तभी तो उन जनाब ने जब तुम्हें सोफे पर लेटे देखा तो बिना रूके सिर्फ इतना ही कह पाये ...‘भई, सज्जन कुमार जी, ये जरूरी रिपोर्ट्स हैं, आज ही मुख्यालय भेजे जाने हैं। बॉस से दस्तखत करवा दीजियेगा। मेरी ट्रेनका टाइम हो गया है। बॉस का इन्तजार नहीं कर पाऊँगा।’...उनकी बात पर तुमने सोफे पर लेटे-लेटे ही, हल्के आँखें खोलते,...‘वहीं टेबल पर रख दीजिए’...कहते उनकी तरफ से मुँह फेरते, अपना मुँह अखबार से ढ़ंक कर लेट गये, और वो जनाब बिना एक पल भी गंवाये, ये कागज यहीं टेबल पर रखकर चले गये।”

“तो क्या मुझे उनकी आरती भी उतारनी थी?”

“ये अपेक्षा तो तुमसे कोई भी नहीं करेगा। लेकिन अच्छे व्यवहार की उम्मीद तो सभी करेंगे। सभी जानते हैं कि बॉस जरा गुस्सैल और खब्ती किस्म के हैं। मिलने वाले से इतनी पूछ-ताछ, डांट-डपट करते हैं कि उसकी अच्छी-खासी क्लास भी लेने लगते हैं। ऐसे में ज्यादातर लोग उनसे मिलने से अवायड ही करते हैं, चाहते हैं कि तुम्हीं उनका कोई-न-कोई संतोषजनक समाधान, कोई राह निकाल दो। पर तुम उनकी इसी मजबूरी का फायदा उठाते हो।”

"अब फायदे वाली जगह पर तो फायदा ही उठाना चाहिए न...! नहीं तो हमारी आने वाली पीढ़ियां हमें क्या कहेंगी? धिक्कारेंगी नहीं? हम पर हँसेंगी नहीं? हें-हें-हें।"

"यार, मैं सीरियॅसली बात कर रहा हूँ, और तुम इसे मजाक में ले रहे हो? तुम सुधरने वाले नहीं हो। तुम्हारी ऐसी ही जिद के कारण कभी-कभी झगडे के से हालात बन जाते हैं। अब तुम्हीं देख लो, पिछले फ्राइडे को सुरेश से तुम्हारी लड़ाई हुई थी, उसके दो-तीन दिन पहले ही देशराज से किसी बात पर भिंड़ गये थे। सम्पत लाल से तो नौबत गाली-गलौज, हाथा-पाई तक पहुँच गयी थी। सुनने में तो यह भी आया था कि उस दिन शोर-शराबा सुनकर बाहर गेट पर बैठे प्यून ने आकर अगर बीच-बचाव न किया होता, तो पता नहीं क्या हो जाता?"

"तुम्हें पता है? जब ये बात बॉस को पता लगी तो सम्पत लाल का क्या हाल हुआ था? बॉस ने अपने कमरे में बुलाकर उसकी खूब खबर ली। मुँह से बोल नहीं फूट रहे थे।...'सॉरी-सर...सॉरी-सर...' कहते...स्साले की घिग्घी बंध गयी थी।"

"हाँ-हाँ पता है, और ये भी तो बताओ कि उस दिन बॉस ने तुम्हारी भी कायदे से क्लास लेते, लोगों से ढ़ंग से पेश आने के लिए तुम्हें भी ताकीद की थी, ये क्यों नहीं बताते?"

"बोलते जाओ।"

"यार! तुम्हारी यही बड़ी खराब आदत है, किसी की भी नहीं सुनते। किसी की बातों पर विश्वास नहीं करते। तुम्हें लगता है कि तुम्हारे अलावा सब झूठे हैं। अब देखो, उसी दिन की बात है, जब मनबोध बाबू को दफ्तर आने में थोड़ी देर हो गयी थी, उन्होंने देरी का कारण भी बताया था कि स्कूटी चलाते वक्त, अचानक किसी को पीछे देखने लगे, तभी वो सामने किसी से टकरा गये, जिससे उनके बाजू में चोट आ गयी थी, कुहनियों में लगी चोट तो उन्होंने दिखाया भी था। लेकिन तुमने उनकी बातें सुनने, देर होने के वाजिब कारण के वाबजूद, उनके बारे में बॉस से पता नहीं क्या-क्या ऊल-जलूल शिकायतें करते, दफ्तर में विलम्ब से आने के लिए उनका स्पष्टीकरण माँग लिया। संयोग से मैं उस दिन भी यहीं बैठा था। मुझे अच्छी तरह याद है कि स्पष्टीकरण का पत्र लेते हुए वो तुमसे बहुत क्षुब्ध दिख रहे थे। वो बॉस से मिलकर अपनी बात रखना चाहते थे, लेकिन उस दिन तुमने उन्हें बॉस से भी मिलने नहीं दिया। बेचारे कसमसा कर रह गये थे।"

"तुम्हें नहीं पता है कि मनबोध बाबू क्या चीज और कितने बड़े रागिया हैं? वो कोई देहाती भुज्ज नहीं, अच्छे-अच्छों के कान काटने वालों में से हैं।

यहाँ मेरे सामने अकड़े रहेंगे, और अन्दर जाकर बॉस से लिबिर-लिबिर लन्तरानियां बतियाते, पता नहीं किस-किस खोह से, जाने कब की अंट-शंट बातें खोज-बीन कर मेरी शिकायतें भी करते रहेंगे। लगाई-बुझाई के उस्ताद हैं वो। अच्छा! जरा ये बताओ, स्कूटी चलाते समय आगे देखना चाहिए कि पीछे?''

''जाहिर है, आगे।''

''तो वो पीछे क्यों देख रहे थे?''

''ढ़ेर सारी वजहें हो सकती हैं।''

''कोई खूबसूरत वजह भी?''

''वैसे, ऐसी किसी सम्भावना से इन्कार भी तो नहीं किया जा सकता...हें-हें-हें।''

''वही तो। जनाब रिटायरमेण्ट की कगार पर हैं, लेकिन दिल अभी वही टीन-एजर्स वाला ही रखते हैं...हें-हें-हें।''

''लेकिन यार, उन्हें चोट तो लगी ही थी। एक जगह से तो उनके कमीज की बाहाँ भी फट गयी थी। कम-अज-कम इससे तो इन्कार नहीं ही किया जा सकता। फिर वो सज्जन तो विभाग में सबसे सीनियर और बुजुर्ग भी हैं। ऐसे में तुम्हें किसी के आत्मसम्मान को ठेस पहुंचाने की इजाजत नहीं होनी चाहिए। एक्चुवॅली, तुम जो हो, अपने आप को वो नहीं समझते, और जो नहीं हो, वो समझते हो। जबकि लोग तुमको वही समझते हैं, जो तुम वास्तव में हो। तुम मात्र अपने बॉस के जनसम्पर्क अधिकारी हो, न कि खुद बॉस। जिस तरह हमें अपनी खूबियों और खामियों को जानना चाहिए, उसी तरह अपने से मजबूत की मजबूतियों और कमजोर की कमजोरियां को भी जानना चाहिए। हो सकता है कि लोगों को देखने-परखने- जानने-बूझने का तुम्हारा पैमाना तुम्हें ठीक लगता हो, लेकिन वो पैमाना सार्वभौमिक सत्य हो, ये जरूरी तो नहीं। सम्मान तभी मिलेगा, जब तुम दूसरे लोगों को भी उचित सम्मान दोगे, उनसे जुड़ोगे, उनकी भावनाओं की कद्र करोगे, उनके जूतों में पांव रखते सोचोगे, उन्हें समझोगे।''

''देखो सहाय, यहाँ सीधी उँगली से काम नहीं चलता, उँगली थोड़ी टेढ़ी भी करनी पड़ती है। तुम इन चिक-चिक करने वाले खोटे सिक्कों को नहीं जानते।''

''कोई भी बेकार में चिक-चिक करना नहीं चाहता। तुम्हारी तरह ही यहाँ काम करने वाले बाकी सभी भी जिम्मेदार लोग हैं, और मैं समझता हूँ कि खोटे नहीं खरे भी हैं।

लोग तुम्हारी अनप्लीजेण्ट बातों को अवायड करना चाहते हैं। लेकिन लोगों की शालीनता, उनके धैर्य को तुम अपनी हेठी समझते हो। आखिर वो भी उसी हाड़-मांस के बने हैं, जिससे कि तुम। हम सभी की अपनी-अपनी परेशानियां हैं, प्राथमिकताएं हैं। लोगों की गरज होती है, तभी वो तुम्हारे पास आते हैं। किसी को शौक नहीं कि वो तुम्हें खामखाह ही पसन्द-नापसन्द करे?''

''तुम उन सबकी तरफदारी क्यों कर रहे हो? तुम उन्हें नहीं जानते। मैं उनकी रग-रग से वाकिफ हूँ। कौन जमूरा, कैसी उस्तादी से काबू में रहेगा, मुझे अच्छी तरह पता है। आखिर, यहाँ काम करने का मेरा लगभग तेइस वर्षों का अनुभव जाया कैसे हो सकता है? तुम्हें पता होना चाहिए कि सभी तालों की अलग-अलग चाभियां जरूर होती हैं, लेकिन एक ठो 'मास्टर-की' भी होती है, जिससे सभी प्रकार के ताले खुल जाते हैं। बॉस के पास अगर इन सबकी चाभियां हैं, तो मेरे पास 'मास्टर-की'। अगर मैं इन्हें अपने तरीके से न संभालूँ, तो यहाँ की भेंड़चाल में सब गड्ड-मड्ड हो जायेगा। कुछ समझे कि नहीं समझे...?''

''भई, मैं तो इतना जानता हूँ कि सभी के अपने-अपने संस्कार हैं। अपने कार्य, व्यवहार और आचरण हैं। यहाँ सभी मगन हैं, व्यस्त हैं, अपने-अपने तरीके, अपना-अपना कार्य करने में। देखा जाये तो कोई भी सिस्टम किसी एक के दृष्टिकोण अनुसार नहीं चलता। आखिर समाजिकता भी कोई चीज है कि नहीं? अगर हम सभी स्वतंत्र हैं, तो कहीं-न-कहीं हमारी हदें भी हैं। आपसी सम्बन्धों में बेहतरी के लिए जरूरी है कि हम सभी को अपनी-अपनी हदों का ध्यान रहे। अगर तुम्हें लगता है कि यहाँ सिर्फ तुम्हारी मर्जी चलेगी, तो ये तुम्हारी गलत-फहमी है। तुम्हें पता है, बाहर तुम्हारी क्या इमेज है? लोग क्या सोचते हैं, तुम्हारे बारे में? बाहर वालों की निगाह में कितनी इज्जत है तुम्हारे लिए?''

''अच्छी तरह पता है। मैं किसी भी तरह की गलत-फहमी का शिकार नहीं हूँ। फिर, ये इमेज किस चिड़िया का नाम है? मुझे किसी सो-कॉल्ड इमेज की परवाह नहीं।''

''लेकिन सोचो जरा, जब तुम कभी गुस्से में अपने मातहतों पर चिल्लाते हो या कभी-कभी फोन पटक देते हो, तो उन्हें कैसा लगता होगा? जरा याद करो, कॉलेज के दिनों में तुम कितने दयालु, सहृदय और सहयोगी प्रवृत्त के थे। गाहे-बगाहे जरूरतमन्द लोगों की मदद कर दिया करते थे। फी-काउण्टर पर या लायब्रेरी में किताबें इशू कराने वाले छात्रों की ज्यादा भींड़ दिखती थी, तो आगे बढ़-चढ़ कर व्यवस्था बनाते सभी साथियों की मदद करते थे। कॉलेज में तुम्हारी अच्छी-खासी साख थी। थ्रू-आउट फर्स्ट-क्लास रहे, जिसकी वजह से तुम्हें इस प्रतिष्ठित संस्थान में नौकरी मिली। परन्तु इधर बाइस-तेइस वर्षों में ही तुम्हारे व्यक्तित्व में ये कैसा परिवर्तन आ गया?

याद रखो, तुम्हारी वजह से अगर किसी को खुशी मिलती है, तो वापसी में उनका आशीर्वाद भी मिलता है, जिससे निश्चय ही तुम्हारा जीवन सुखमय होता है। मैंने तो देखा है कि तुम अक्सर अपने कानों में हेड-फोन लगाये, ऐसे हाव-भाव बनाये बैठे रहते हो मानो किसी से बहुत जरूरी बातें कर रहे हो, जबकि तुम उस समय अपना मन-पसन्द कोई फिल्मी गाना सुन रहे होते हो। ऐसे में जब बॉस से मिलने कोई आता है तो, अति-व्यस्तता का नाटक करते, उनकी तरफ तुम जरा भी ध्यान नहीं देते। ऐसा लगता है कि लोगों को इन्तजार करवाने में तुम्हें मजा आता है। तुम इस कदर पर-पीड़क कैसे हो सकते हो?''

''भई देखो, महत्व कुर्सी का होता है, हमारा नहीं। आज मैं यहाँ बैठा हूँ , कल यहाँ कोई और होगा। भविष्य में मेरी पोस्टिंग ऐसी जगह भी हो सकती है, जहाँ मक्खी भी मारने को न मिले? कम-अज-कम अपने पोस्ट का महत्व तो हर किसी को समझना चाहिए कि नहीं?''

''ये क्यों भूलते हो कि तुम मात्र बॉस की सहायता के लिए हो, बॉस नहीं। हम सभी कहीं-न-कहीं एक-दूसरे पर निर्भर हैं। हमारी पूरी दिनचर्या, हमारे काम-काज, घर से लेकर बाहर तक की दुनिया, हमारे इर्द-गिर्द स्थित लोगों के आपसी सहयोग से ही चलती है। क्या कभी सोचा है तुमने कि तुम्हारे घर में जो पानी आता है, उसमें कितने लोगों का सहयोग होता है? यदि उनमें से कोई एक भी मौके पर अपना दायित्व न निभा पाये, एक भी कड़ी टूट जाये तो पूरी चेन ही टूट जाती है। चहुँ ओर हाहाकार मच जाता है। हैण्ड-पम्पों के सामने हाथों में बाल्टियां टाँगें, लोगों की लम्बी-लम्बी कतारें लग जाती हैं। पहले पानी भरने के चक्कर में हो-हल्ले की चिल्लपों, गुहारें होने लगती है। आक्रोश में लोग सड़कों पर उतर आते हैं। कभी-कभी तो मामला कानून-व्यवस्था का भी हो जाता है।''

''अरे यार! अब तुम पानी की लाइन में लगने वालों से, यहाँ आने वालों की बराबरी तो न ही करो। देखो! हमारा काम है कागजी घोड़े दौड़ाते रहना, और गाहे-बगाहे उन्हें नियन्त्रित रखना, ताकि सभी फले-फूलें। यत्र-तत्र-सर्वत्र की व्यवस्था ठीक-ठाक चलती रहे। कुछ समझे कि नहीं समझे...?''

''जो आदमी अभी ये कागज यहाँ टेबल पर रख कर गया है, शायद तुम उसे अच्छी तरह नहीं जानते होगे। हो सकता है तुमने उसे कोई ऐरा-गैरा-नत्थूखैरा समझा होगा, पर मुझे पता है कि वो कौन है, और क्या हैसियत रखता है। वो सिर्फ आज शाम तक का इन्तजार करेगा। कल से ही उसके फोन घनघनाने लगेंगे। ऊपर से फोन आते ही, फौरन उनका कागज सबसे ऊपर लगाकर तुम खुद ही बॉस के सामने ले जाओगे, हो सकेगा तो फोन करके उन्हें बुलवाने को भी तुमसे कहा जायेगा।... 'जनाब, आपके कागज पर दस्तखत हो गये हैं, और रिपोर्ट मुख्यालय भेज भी दिये गये हैं। आकर पावती ले जाइये या किसी को भेजकर मंगवा लीजिएगा।' ये जुमले भी तुम्हें उनसे कहने पड़ सकते हैं।''

"भई! तुम खामखाह ही मेरी भद्द मत पिटवाओ। आखिर, हमें भी तो अपनी इम्पार्टेन्स बनाए रखनी होती है कि नहीं?"

"यार! तुम तो इम्पार्टेन्ट जगह पर बैठे ही हो। देखो! हम कौन हैं, से ज्यादा महत्वपूर्ण ये है कि हम बैठे कहाँ हैं? हमारी हैसियत क्या है? फिर तुम तो बॉस के जनसम्पर्क अधिकारी हो। ये अलग बात है कि बॉस अगर बिल्डिंग हैं तो तुम उन्हें बनाने में प्रयोग में लाये जा रहे बिल्डिंग-मैटेरियल्स मात्र हो, और याद रखो बिल्डिंग-मैटेरियल्स की उम्र नहीं होती। उम्र होती है, उनके इस्तेमाल से बनाई गयी बिल्डिंग की। तुम्हारी मेज पर कितने तरह के फूलदान-कलमदान और शो-पीसेज रखे हैं? तुम बॉस के साथ कितना समय बिताते हो? वो तुम्हें कितना मान-सम्मान देते हैं? तुम्हारी घरेलू परिस्थितियां क्या हैं? तुम्हारे तनाव व अपनी परेशानियां क्या हैं? तुमसे या तुम्हारे बॉस से मिलने आये लोगों को इससे कुछ लेना-देना नहीं। अपनी सोच-समझ अनुसार...यदा-कदा तुम जिन्हें अपमानित-प्रताड़ित करते लहालोट हुए रहते हो, और सामने वाला यदि अन्यथा नहीं लेता, तो यह उसकी शालीनता या उसका धैर्य है, न कि तुम्हारा या तुम्हारे बॉस का भय? जिस दिन वे अपनी पर आ जायेंगे, ईंट-से-ईंट बजा देंगे। ये तो वही मिसाल हुआ कि...'बिच्छू का मन्तर न जाने, साँप के बिल में हाथ डाले'...जबरदस्ती ही अपनी इम्पार्टेन्स का बाजा मत बजाओ। वो कहते हैं न...'एवरी डॉग हैज ए डे'...?"

"तो क्या तुम मुझे बॉस का कुत्ता समझते हो?"

"अरे! नहीं यार। मैं तो ऐसे ही मिसाल देने के लिए कह रहा था। बातचीत की रौ में ये कहावत मुँह से निकल गयी। वैसे देखा जाय तो तुम्हारा काम ही क्या है? बॉस से डिक्टेशन लेना, उसे टाइप करना। बॉस की मीटिंग के लिए टाइम-एण्ड-डेट देना। उनके टूर का प्रोग्राम बनाना। उनसे मिलने आये लोगों के लिए चाय-नाश्ते की व्यवस्था करना। साथ ही कभी-कभी बॉस के घर का कोई छोटा-मोटा पर्सनल काम भी कर देना, यही न? झुट्ठें तीरंदाजी वाली बात कर रहे हो...'इस कागज पर तुरन्त बॉस के दस्तखत नहीं कराऊँगा, महीनों दौड़ाऊँगा, ज्यादा फोन-फान करेंगे तो बॉस से उल्टा लिखवा दूँगा।'...अरे! कभी सोचा भी है कि पीठ पीछे तुम्हें लोग क्या कहते हैं? लोगों की जुबान पर तुम्हारा नाम आते ही, मुँह बिचकाते, बहत्तर कोण का बनाते उन लोगों की जुबान कैसे कड़वी-कसैली हो जाती है? तुम्हारे बातचीत का लहजा भी लोगों को नहीं भाता। यहाँ तक कि टेलीफोन पर भी जब तुम किसी से बात करते हो, तो लगता है जैसे तुम ही बॉस हो, तुम ही हुक्म दे रहे हो? भाषा ऐसी लट्ठमार है कि तुम्हें अपने सीनियर्स, जूनियर्स या कलिग्स का जैसे कुछ अहसास ही न हो? लोग यहाँ से कटु अनुभव ही लेकर जाते हैं। तुम्हारी कोई तारीफ नहीं करता। तुम्हारी बोली-बानी से तो यह भी पता चलता है कि तुम किस खानदान से हो?

कैसे माहौल, संस्कारों में पले-बढ़े हो? अरे! बॉस की संगत में रह कर अंग्रेजी के दो-चार अक्षर लिखना -बोलना सीख गये हो, तो उसी के सहारे लोगों पर रौब गाँठते रहते हो। किसी दिन असली अंग्रेजी वाला आ गया तो बगले झाँकने लगोगे।''

''देखो भाई! मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो यदा-कदा बॉस से मेरी शिकायतें, चुगलियां करते रहते हैं, पर मैं जहाँ बैठा हूँ ,वहाँ ये सब बातें बेहद सामान्य हैं। यहाँ आने वालों और कभी-कभी के कुछेक ड्रामेबाजों को भी, अच्छी तरह जानता-पहचानता हूँ , और मुझे उनकी दवाई भी मालूम है। किसको कितनी मात्रा में कब-कब, कैसी-कैसी डोज देनी है, ये भी जानता हूँ। तुम्हें तो पता ही है कि मैं कैसी जगह बैठा हूँ ? यहाँ कड़क-मिजाज दिखने, रिजर्व रहने की थोड़ी-बहुत एक्टिंग तो करनी ही पड़ती है। कभी इस कुर्सी पर बैठोगे तो तुम खुद भी महसूस करोगे।''

''लेकिन तुम्हारा व्यवहार तो अपने प्यून्स के साथ भी अच्छा नहीं है। उनके साथ भी तुम ऐसा सुलूक करते हो मानो वो तुम्हारा ही दिया हुआ खा रहे हों? आत्मसम्मान तो छोटे-से-छोटे पद पर बैठे इन्सान का भी होता है। तुम्हें पता है? तुम्हारे कमरे के बाहरी दीवाल पर ही किसी ने नुकीली चीज से खुरचते हुए लिख दिया है...'कुत्ते से सावधान।' पता नहीं...तुम्हारा ध्यान कभी उधर गया भी है या नहीं? हो सकता है कि ये, तुम्हारे अधीनस्थों में से ही किन्हीं का काम हो? लेकिन, तुम्हारा ये तानाशाही वाला रवैया ज्यादा दिन नहीं चलने वाला। अरे! आदमी के कार्य, व्यवहार और आचरण की पहचान ही इस बात से निर्धारित होती है कि वो अपने अधीनस्थों से कैसा व्यवहार करता है? तुम्हारे माँ -बाप ने तुम्हारा नाम सज्जन कुमार रखा है, लेकिन क्या उन्होंने कभी सोचा होगा कि तुम ऐसे दुर्जन प्रवृत्ति के हो जाओगे?''

''हें-हें-हें...बढ़िया बोल लेते हो। आखिर, लिखने-पढ़ने वाले आदमी जो ठहरे।''

''हँसो मत! बातें भी मत बनाओ। ये सीरियस-मैटर है। तुम्हारा हितैषी हूँ, सहपाठी हूँ, इसलिए समझा रहा हूँ। लोगों के साथ अच्छा व्यवहार करने से तुम्हारा सम्मान नहीं घट जायेगा, बल्कि बढ़ेगा ही। क्यों भूलते हो कि तुम एक किसान के बेटे हो। तुम्हारे माँ -बाप ने हाड़-तोड़ मेहनत करते, तुम्हें पढ़ाया-लिखाया कि तुम एक दिन उनका नाम रौशन करो, न कि तुम्हारे काम व व्यवहार से उनकी जग-हंसाई हो? मुझे उम्मीद है तुमने मेरी बातों पर अवश्य गौर किया होगा...'जब जागो तभी सवेरा।' तुम शायद दीवार पर लिखी इबारतें नहीं पढ़ पा रहे हो, कहीं ऐसा न हो, जब तुम इन्हें पढ़ने की कोशिश करो, तो इतनी देर हो जाये कि ये इबारतें धुंधली हो जायं? खैर...लंच-टाइम खत्म हो रहा है, और बॉस भी आ गये हैं। अब उठो और वो सज्जन जो सामने टेबल पर पड़ा कागज दे गये हैं, झटपट उन पर बॉस के दस्तखत करवाओ।''

"यार सहाय! तुम बहुत देर से माठा किये हुए हो। तुम्हारी ये ऊल-जलूल मिसालें, ये प्रवचन सुन-सुनकर मेरा माथा भन्ना गया है। लंच-टाइम खत्म हुआ, अब तुम मेरी सीधी और दो-टूक बात सुनो। यहाँ से उठो, और सामने के दरवाजे से बिना पीछे मुड़कर देखे, फौरन निकल लो। तुम्हें कुछ पता नहीं कि घी निकालने के लिए उंगली कितनी टेढ़ी करनी पड़ती है, और कितनी बार? अभी उन जनाब को दस्स चक्कर लगवाऊंगा, तब इन्हें समझ आयेगा। बॉस के दस्तखत अगर इतनी ही आसानी से मिलने लगे, तो हमारी क्या जरूरत? जिसे देखो, मुँह उठाये चला आता है। न सलाम न दुआ, बस्स ये काम, वो काम। जनाब आये और काम बताकर चलते बने, जैसे इनके बाप के नौकर हैं हम? देखा जाये तो तुम्हारे जैसे लोगों ने ही यहाँ का सिस्टम खराब कर रखा है। मुझे अच्छी तरह पता है कि मेरी तैनाती यहाँ क्या काम करने के लिए हुई है? साथ ही यह भी मालूम है कि लोगों का मनोरंजन करना, उनको खुश रखना, उन्हें प्रभावित करना भी मेरा काम नहीं है। लोगों से कब, कैसे और क्या काम लिया जाये, सिर्फ ये तय करना मेरा काम है। कोई मुझसे नाराज हो। चिढ़ा हो। होता रहे, अपनी बला से।"

"अच्छा भाई, मैं चलता हूँ ...तुम नहीं सुधरने वाले...।" कहते, बड़बड़ाते हुए सहाय साहब वहाँ से निकल गये।

राम नगीना मौर्य

सम्प्रति- राजकीय सेवारत (उत्तर प्रदेश सचिवालय, लखनऊ में विशेष सचिव के पद पर कार्यरत।)

अनेक पत्र/पत्रिकाओं में प्रकाशन, अनेक साझा संकलन में अनेक आलेख एवं कविताएँ प्रकाशित।

अनेक सम्मान एवं पुरस्कारों से सम्मानित।

सम्पर्क - 5/348, विराज खण्ड, गोमती नगर लखनऊ - 226010, उत्तर प्रदेश, मोबाईल -9450648701

ई-मेल- ramnaginamaurya2011@gmail.com

जसिया

अंकित कुमार मिश्रा

अरे मालकिन सुनो तो...! आज हमकों थोड़ा सा गुड़ दे दो..! ये कहते हुए एक सत्तर साल का बूढ़ा लाठी छोड़कर उकरु बैठ गया। उसे लगा कि उसकी बात किसी ने नहीं सुनी, तो उसने फिर आवाज दी - अरे मालिकन बहू...! क्या भीतर छिप गई...बाहर तो आओ..आज बहुत दिनों बाद आया हूँ, कुछ तो लेकर ही जाऊँगा।

भीतर से एक लड़का निकला, जो ख़ुद को मालिक के रुआब में भरकर बोला..अरे मम्मी..! ये जसिया आया है, बाहर आओ।

ये कहते हुए उसने बूढ़े के पाँव छुए औऱ बाहर निकल गया। बूढ़ा एक टक अंदर की ओऱ देख रहा था,मानो पलक झपकाना ही भूल गया हो। तब तक काम छोड़कर गृहणी बाहर निकली,औऱ इशारे से पूछने लगी - क्या चाहिए..?

जसिया चुपचाप बैठा रहा,
गृहणी ने फ़िर कहा - क्या चाहिए..?

वैसे यहाँ परबता देना उचित है कि जसिया कोई भिखारी नहीं अपितु इसी गृहणी का पट्टीदार ही है। पट्टीदार परिवार की ही पीढ़ी कहलाती है,हाँ थोड़ा दस से या बीस पुश्तों का फ़र्क आने पर उन्हें पट्टी का नाम दे देतें हैं। जसिया इन्हीं पट्टीदारों में से था, जो अक्सर परिवार औऱ पट्टीदार की कड़ी को जोड़ता रहता था।

गृहणी उसके पास बैठती हुई बोली -
तबियत ठीक है...?

जसिया ऊँचा सुनता था औऱ कभी- क़भी सुनता भी नहीं था। क़ुछ लोग तो कहतें हैं कि वो केवल अपनी ही सुनता है। परंतु ऐसा था नहीं, जसिया जिसके पास अपने काम से जाता था,उसकी सुनता था, हाँ यदि कोई उसके पास काम से आता तो फ़िर उसके कान में जूं तक न रेंगती थी।

गृहणी भीतर से एक लोटा पानी ले आयी औऱ साथ में कुछ खाने को,
पानी पीकर बोला - एक पन्नी दे दो, इसको उसमें डाल दो...!

गृहणी ने उसे घूरा...! क्योंकि अक्सर जसिया यही करता था, उसे क़ुछ भी दो, वह वहीं पर न ख़ाकर घर ले जाता था। पर घर में खाता तो कोई बात नहीं थी, पर वो अपने भाई के पोते- पोतियों में बाँट देता। इसलिए गृहणी को अच्छा न लगता।

गृहणी ने फिर इशारे से पूछा - क्या है...?
-थोड़ा सा गुड़ दे दो..! औऱ थोड़ी सी बड़ी दे दो...!

-गुड़ नहीं है घर में...! बाज़ार नहीं गयी..। गृहणी ने उसको सुनाने के अंदाज़ में पुकार के कहा

पर वह क्यों सुने..,वह तो केवल काम की बात सुनता था, वह फ़िर बोला

-बहुत दिनों से आया नहीं था, इसलिए चला आया..वैसे मैं किसी के यहाँ जाता भी नहीं.. यहीं मिलता है, इसीलिए आता हूँ।

गृहिणी - हाँ..! डेरा तो भाई के लड़के को बना रहे हो..औऱ परेशान हमको करते रहते हो,

वो चुपचाप बैठा रहा,

गृहणी थोड़ा ख़फ़ा रहती थी, क्योंकि जब मन करता ये मुँह उठाये चला आता था कुछ न क़ुछ माँगने, पर हाँ दे जरूर देती थी, क्योंकि यदि वो क़ुछ न पाता तो आता की क्यों..!

ख़ैर किसी तरह घर में जो थोड़ा बहुत गुड़ था, घर झारकर दे दिया गया, वह चला गया, हाँ उसकी आदत यही थी कि जाते - जाते वापस आकर सब्जी के लिए आलू जरूर मांगता था, चाहे तुम ख़रीद कर दो..! या फ़िर घर में उपजाई हुई दो।

गृहणी लड़का गाँव से वापस आया।
मम्मी...! जसिया क्या माँग रहा था...?

-गुड़..! औऱ सब्जी ले गया है।

- ये रोज़ चला आता है..!

- अरे सयाने हैं रे..! कहाँ जाएंगे.. औऱ फिर इन सबके आशीर्वाद से मिलता भी तो है। गृहणी ग़ुस्सा तो जल्दी हो जाती थी पर समझदार थी। उसे पता था कि यदि मैं ही बुजुर्गों का सम्मान नहीं करूँगी तो मेरे लड़के क्या करेंगे। उसके पति तो बाहर रहते थे, खेती सब अधिया वाले करते थे, देखा जाय तो आगे पीछे करके ख़र्चा ठीक तरह से चलता था।

कई वर्ष बीते..! इनका घर गाँव के बाहर बना..! पुराना घर ध्वस्त हुआ...पर अभी शायद

जसिया का क़ुछ हक और था..! वो यहाँ भी पधारने लगा।

हाँ पहले क़ुछ जल्दी-जल्दी आता था, पर अब घर दूर हो जाने के कारण महीनों में आता है। वैसे काम करने की उसकी हिम्मत नहीं है, पर आज भी अपनी औऱ अपने भाई के 15 मूड़ गोरु अकेले चराता है। हाँ चराता किसी औऱ के ही खेत में ही था, औऱ कोई गाली तो उसे दे नहीं सकता था। क्योंकि गाली तो वह हुई न जो सुना के दी जाय, उसे गाली सुना कर कौन सर फोड़े। धान की ऋतु चल रही थी क़ुछ लोग रोपण में लगे थे तो कुछ लोग अपने रोपण की सुरक्षा कर रहे थे। क़ुछ लोगों क़े खेत गाँव से दूर थे इसलिए वो बाड़ बनाकर अपने रोपण की सुरक्षा करते थे। गृहणी के यहाँ क़ुछ सालों से धान की खेती बन्द कर दी थी, क्योंकि कोई करने वाला नहीं था, पर इस साल की गई थी क्योंकि अब घर खेत के नज़दीक ही बन गया था। इसलिए गृहणी भी मजदूरों को निर्देशन देती हुई अपने घर के पास बने बाड़े के पास खड़ी थी। अचानक गाँव में हल्ला मचा...! भीड़ भाग रही थी, कोई कहता उसकी ग़लती थी, कोई कहता दूसरे की ग़लती थी।

चिल्लम - चिल्ली हो रही थी, लोग भागे जा रहे थे, तभी एक मजदूर से गृहणी ने पूछा.. - किसे क्या हो गया...?

मजदूर तो वहीं पे काम कर रहा था, तो उसने खेत से निकलकर राह में दौड़ने वाले एक आदमी को रोका...!

- किसे क्या हो गया कक्कू..!

-कक्कू भागे जा रहे थे, थोड़ा रुके

- राम-राम सवेरे-सवेरे अनर्थ कर दिया..!

-और कुछ बड़बड़ाकर फ़िर भागे...!

मजदूर को कोई और बताने वाला न दिखा तो वह भी उधर ही निकल गया। तब तक छोटा लड़का गाँव की तरफ से भागता हुआ आया....

- मम्मी..! मम्मी..! वो। जसिया का किसी ने कपार फोड़ दिया..!

छोटा लड़का थोड़ा गाँव में ज़्यादा घूमता था, इसलिए भाषा की पकड़ भी वही थी। वैसे वो ज़्यादा घर में नहीं ठहरता.., पर अभी पता नहीं क्यों भाग आया।

मम्मी - किसका सर फूट गया...?

लड़का - काकू का..!

जसिया को गाँव में काकू भी कहते थे, नाम तो उसका जसिया भी नहीं था, पर अब चल गया तो असली नाम कौन पूछता है।

मम्मी - काकू का...?

लड़का भागते हुए- हाँ..! उसने रामदेव का पूरा रोपा चरा लिया था कल, तो आज उसने खेत में ही उसको छेंक के मार लिया। हम जा रहे हैं लालजी को बुलाने।

गृहणी अवाक रह गयी, वह सुनती तो थी कि जसिया के गोरु अक्सर खेती चरते हैं, पर ये न जानती थी कि वो किसी की पूरी खेती भी चरा सकता है।

हाँ ये जरूर वो जानती है कि जसिया को आँखों में कम दिखाई देता है,तो क़भी-क़भी इधर- उधर उसके गोरु चले जाते होंगे, पर आज यह क्या हुआ?

वह मजदूरों से बोली - मैं गाँव की तऱफ से आती हूँ, घर देखना। इतना भी वो भागते-भागते ही बोली।

मजदूर अपने काम में लग गए उन्हें क्या...? ठण्ड में वो काम कर रहे थे, ऊपर से मार-पीट का काम कौन जाए। जो गया भी था वो राजनीति वाला था। इसीलिए कूदकर भागा था।

बरहाल..! गृहणी तेज़ी से चले जा रही थी, क्यों जा रही थी यह तो पता था, पर यह भावना क्या थी वो नहीं जानती थी। जसिया उसके घर आकर उसे परेशान ही करता था पर आख़िर था तो पट्टीदार ही।

हाँ, कभी-कभी वह ग़ुस्से में चिढ़कर ये जरूर कह देती थी कि यह बूढ़ा मरता भी नहीं। वह बेताहाशा भागे जा रही थी, गाँव से बाहर वाला घर आधे किलोमीटर की दूरी पर था। जसिया भी चार-पाँच बार बैठकर यहाँ आता था। पर आज गृहणी को भी ये रास्ता कुछ जसिया के जैसा ही लग रहा थी, उसे उस दिन एहसास भी हो रहा था कि जसिया कितनी मेहनत से आता होगा। पर किसी तरह भावनाओं की ऊबड़-खाबड़ डगर से पक्की सड़क होते हुए वो गाँव पहुँची। हुजूम भाग रहा था, कोई कहता ठीक तो मारा है, बहुत खेतो चराता था। कोई कहता राम-राम अनर्थ हुआ। जितने मुँह उतनी बातें, जितने दिल उतनी जज्बातें। भीड़-भाड़ जुड़ी हुई थी। लोग खटिया को घेरे हुए खड़े थे। एक तरफ़ महिला दल बैठा था, तो खटिया की तरफ़ पुरूष दल। उसके लिए रोने वाला तो उसका सगा कोई नहीं था, हाँ कोसने के लिए भाई की बहू जरूर महिलाओं के साथ बैठी बातें कर रही थी।

-बूढ़ा सठिया गया पर अकल नहीं आई। किसी की खेती चराओगे तो क्या वो आरती उतारेगा। हमारे ही करम में लिखा है ये सब।

गृहणी भी जाकर महिलाओं के बीच में बैठ गयी। महिलाओं ने उसे बैठने को कहा, उसका सम्मान गाँव में था। वैसे जब तक वो गाँव में रही तब तो गाँव वाले उसे चित्त में चढ़ाए ही रहते थे, क्यूँ..? ये तो ख़ुद मैं भी नहीं जानता।

तभी जसिया के भाई साहब की चिल्लाहट हुई - रिपोर्ट करेंगे उसके नाम..! बड़ा

गामा आया है, सयाने आदमी को लाठी मारते हाँथ नहीं कांपा। अधम है अधम। लोगों ने शान्त कराया..! कहा की अस्पताल ले चलो, गाड़ी बुलाओ।

भाई ने फ़िर कहा- हम नहीं ले जाएंगे अस्पताल..! जिसने मारा है वो दवाई कराये..! यह बूढ़ा..,

किया क्या है बेचारा। आंखों में दिखाई नहीं देता बराबर, पर गृहस्थी चढ़ी है इसलिए रोज़ ढील लेता है गोरू। कल रामदेव के बगार में चला गया, ऊपर से माया चारा छोलने लगा, छोटी वाली गाय भाग गई, हो गया उसके पीछे....इधऱ बाक़ी के खेत चर लिए। हम उठा के लाये हैं कल इसको, वहीं पर लड़खड़ाकर गिर गया था। मना किया था कि आज से न जाना, पर फ़िर भी गया..! लो अब तो वैसे भी न जाएगा।

गाँव वालों ने भाई को समझाया...! बाद में ये सब बातें हो जाएंगी... खटिया उठा कर रोड तक ले चलो...! अस्पताल ले जाना है।

एक बूढ़ी महिला बोल उठी...

-अरे दादू..! हम लोगों को भी देखने दो...क्या पता अस्पताल से आते हैं या नहीं..!

यह सुन गृहणी को झटका सा लगा...जैसे किसी ने उसे गहरी नींद से जगा दिया हो...वापस आएं या न आएं...? जसिया मर जायेगा..? फ़िर से मेरे घर न आएगा... मैं किसे चिल्लाकर कहूँगी..! पता नहीं औऱ क्या -क्या..!

ख़ैर महिलाओं का हुजूम उसे देखने लगा, सब पुरुष उसे ले जाने की तैयार करने लगे, जसिया थथोड़ी-थोड़ी आँख खोलता, फ़िर बन्द कर लेता, खून की धार बहे जा रही थी। कपड़े बांधने पर भी कोई ख़ास असर न हुआ।

पर न तो जसिया रो रहा था औऱ न ही दर्द का अहसास करा रहा था। शायद बार-बार सबको देख रहा था कि क्या ये सब मेरे शुभचिंतक हैं..? मेरे मरने की इनको भी चिंता है।

लोग जसिया को उठा ले गये...सब महिलाएं तर्क-वितर्क करती चलने लगी। कोई कहती सुंदर बीबी थी वेचारे की आज जिंदा होती तो शायद इस तरह न मर रहा होता

...बीबी तो बीबी...जवान लड़का भी आँखों के सामने मर गया...! राम-राम ज़िंदगी भर अपने हाँथ से बनाता खाता रहा औऱ अब...!

गृहणी उनके साथ चली जा रही थी, उसे यह सब बातें पहले से ही पता थी पर न जाने आज क्यों उसे नई लग रहीं थीं।

वह घर आकर निःशब्द बैठ गयी, धीरे-धीरे गाँव वाले अपने-अपने काम में बातें भूल गए। एक दिन दोपहर लगभग तीन बज़े छोटा लड़का किसी पर चिल्ला रहा था... सोने नहीं देते हो...मम्मी सो रहीं हैं...पता नहीं क्या-क्या...?

गृहणी उठकर देखने गयी ...तो देखा कि जसिया हांफ रहा है...औऱ अंदर झाँक रहा है। गृहणी स्तब्ध खड़ी रह गयी...उसे गाँव की रास्ता भी याद आ रहा था औऱ जसिया की चोट भी...! उसे ये समझ में नहीं आ रहा था कि जसिया ने किसी चीज़ की परवाह नहीं कि जान-लेवा मार वाले घाव के ठीक होते ही यहाँ चला आया। वैसे लेने क्या आया है?...शायद वह जो उसे अपने घर में नहीं मिलता...निस्वार्थ भाव का प्रेम।

अंकित कुमार मिश्रा
बी एस सी, डिप्लोमा इन डॉयरेक्शन,
सतना , एम. पी.
दूरध्वनी: 9340324377,8518920073

संयोग

जितेन्द्र 'कबीर'

आज की आखिरी क्लास के बाद विनय जैसे ही बाहर निकला, सामने चारू खड़ी दिख गई। "चल पड़ना है घर या फिर है कुछ काम?"-- विनय ने चारू से पूछा।
चारू ने मुस्कराते हुए जवाब दिया- "काम कुछ नहीं, क्लास से निकलते आप दिख गये, तो सोचा साथ चलते हैं।"

सुनकर विनय के मन में उल्लास की तरंग सी उठी मगर फिर भी अपनी खुशी को जाहिर न करते हुए सामान्य स्वर में बोला - "चलो फिर चलते हैं।"

दोनों धर्मशाला कालेज के विद्यार्थी हैं। दोनों कचहरी से ही बस लेते हैं तो आते-जाते मुलाकात होती रहती है। एक दूसरे के प्रति शायद उनका मन आकृष्ट भी है।

आपस में बात करते-करते दोनों भागसू रेस्टोरेंट तक आ गए। विनय चारू के साथ थोड़ा ज्यादा समय बिताने के इरादे से बोला-" अगर आपको जल्दी न हो तो यहाँ रुक कर कुछ खा लें।"

विनय के साथ थोड़ा समय बिताने का मौका देख चारू भी मन ही मन प्रसन्न हुई मगर प्रकट में बोली— "जल्दी तो नहीं !! पर घर में थोड़ा लेट हो जाओ तो माँ सौ सवाल करती है।" इस पर विनय यह सोचकर थोड़ा सकपका गया कि उसकी वजह से चारू को ऐसी स्थिति में फंसना पड़ेगा, इसलिए जल्दी में बोला - "कोई बात नहीं! मैं घर जाकर खा लूंगा। एक-डेढ़ घंटे में तो घर पहुंच ही जाएंगे।"

चारू भी उसके साथ समय बिताना चाहती है, ऐसा सोचने लायक उसका आत्मविश्वास नहीं है। चारू विनय की मनःस्थिति जानकर थोड़ा मुस्कुराई और बोली- "अब तो यहीं कुछ खाकर जाएंगे, घर में लाईब्रेरी का बहाना लगा दूंगी।"

विनय की तो जैसे बाछें खिल गई। वो खुश होकर बोला— "चलो फिर, भले काम में देरी क्यों?" दोनों ने रेस्टोरेंट में जा कर कार्नर की टेबल ली और दो प्लेट बड़ा पाव आर्डर किया।

चारू ने ऐसे ही बात शुरू करने के लिहाज से पूछा— "अच्छा आपके घर तो पहाड़ की तरफ हैं, वहाँ तो बड़ी बर्फ पड़ती होगी न?"

डिवाइन फैथ फेलोशिप सोसाइटी द्वारा प्रकाशित हिन्दी साहित्य की पत्रिका

"बहुत ज्यादा तो नहीं, हाँ पर साल में तीन चार बार पड़ जाती है।"- विनय ने जवाब दिया। "हाय!! कितना अच्छा लगता होगा न बर्फ में।"- चारू ने जैसे खुद को बर्फ के बीचों-बीच कल्पना कर कहा। विनय ने हैरानी से पूछा - "आपने कभी बर्फ पड़ती नहीं देखी?" चारू लंबा सांस भर कर बोली- "नहीं!! अब तक तो नहीं।"

अरे, "बड़ा सुन्दर नजारा होता है, जब बर्फ के फाहे नीचे की ओर आते हैं तो ऐसा लगता है जैसे हम ऊपर आसमान की तरफ उठे जा रहें हों। बिल्कुल स्वर्गिक अनुभूति होती है।"- विनय ने जैसे बर्फ का सचित्र वर्णन कर दिया। अचानक विनय के मन में ना जाने क्या आया। उसने चारू से ऐसे ही पूछ लिया - "आप बर्फ पड़ते देखना चाहते हो, मैं आपकी विश पूरी कर सकता हूँ। बोलो गिरानी है बर्फ?"

यह सुनकर चारू की हंसी छूट गई। बाहर धूप लगी थी, मौसम के खराब होने के आसार नहीं थे, उसने कहा- "ऐसे ही थोड़ी पड़ जाती है बर्फ।" अपनी बात से पीछे हटना विनय जानता ही नहीं, चाहे वो कितनी भी असंगत क्यों न हो, वो फिर जोर देकर बोला- "मैं सच बोल रहा हूँ, मैं बर्फ गिरा सकता हूँ।" उसके आग्रह की तीव्रता से चारू ने हार मान ली और बोली- "चलो, करवा दो तो बर्फबारी आज।"

तब तक उनका आर्डर टेबल पर आ चुका था। उसको खाते न खाते अभी बमुश्किल पंद्रह मिनट हुए होंगे कि बाहर मौसम खराब हो गया। जब तक वो रेस्टोरेंट से निकले हल्की बारिश की बूंदें गिरने लगीं। कचहरी तक पहुंचते- पहुंचते बर्फ पड़नी शुरू हो गई। दोनों ने एक-दूसरे को देखा फिर ऊपर आसमान की तरफ देखा - आह!!! कितना सुन्दर दृश्य।

ऐसा लगा जैसे दोनों आसमान में उड़े जा रहे हों, स्वर्गिक आनन्द की अनुभूति। धर्मशाला के मौसम देवता आज इन दो नव- प्रेमियों पर मेहरबान थे। चलते-चलते विनय ने चारू की आंखों में आंखें डाल कर डींग हांकने के अंदाज में कहा -" बोला था ना, बर्फ गिरा सकता हूँ।"

"धन्य हो प्रभु!! आपकी लीला अपरम्पार है।"- चारू ने मुस्कराते हुए चुटकी ली।

जितेन्द्र 'कबीर'
संप्रति – अध्यापक,
गांव नगोड़ी डाक घर साच तहसील व जिला चम्बा हिमाचल प्रदेश
दूरध्वनि - 7018558314, **ईमेल**- jitenderkabir880@gmail.com

बर्थडे विश

टीकेश्वर सिन्हा 'गब्दीवाला'

आज यशोदा बाई रोज की तरह परफेक्ट टाइम पर ऑफिस पहुँची। कमरे को झाड़ू लगाकर फर्नीचर्स को साफ करने लग गयी। गुलदस्ते, पेन स्टैंड्स, फाइल्स वगैरह पर चिंदी चला दी। तभी बगल वाले चैम्बर से हेड क्लर्क मिसेज़ रोहिणी बघेल की आवाज आई- "ऐ यशोदा बाई! इधर आ। तुम भी ना...यशोदा समय पर ऑफिस नहीं आती। यह सब कौन करेगा...मैं करूँगी क्या ?" टेबल पर रजिस्टर को पटकती हुई बड़बड़ाने लगी- "तेरे से अब ऑफिस का काम नहीं होता तो...किसी और जगह ट्रांसफर क्यों नहीं करवा लेती या फिर वॉलंटरी रिटायरमेंट क्यों नहीं ले लती ? साठ की हो गयी हो। सठिया गयी हो।" कुछ देर तक यशोदा बाई खामोश रही। आखिर में बोल पड़ी- "मैं समय पर ऑफिस आती हूँ; और आज भी आ गयी थी। जब मैं आयी, तब आप नहीं आयी थीं। आप हमेशा मुझसे ट्रांसफर और वॉलंटरी रिटायरमेंट की बात क्यों करती हो? अच्छा नहीं लगता मुझे। पैंतीस बरस हो गया मुझे प्यून की नौकरी करते। दो साल ही बचे हैं अब। कहाँ जाऊँगी मैं। और क्यों मैं रिटायरमेंट लूँ?" डी ई ओ अनुराग ठाकुर जी के आते ही दोनों शांत हुईं।

यशोदा बाई ऑफिस के बाहर स्टूल पर बैठी। आज उसे बहुत रोना आ रहा था। आखिर भरी जवानी में उसने पति की मौत के बाद अपने-आप को सम्भाला था। अनुकम्पा की नौकरी भी बड़ी मुश्किल से मिली थी। चार बच्चों की परवरिश की जिम्मेदारी ने उसे अंदर तक हिलाकर रख दिया था; और पिछले साल की कोविड-19 महामारी ने इकलौते जवान बेटे को छिन लिया था। घर पर सिर्फ विधवा बहू थी; और छः महीने का पोता।

लंचटाइम तक यशोदा बाई ऑफिस में व्यस्त रही। आज उसका मन जल्दी घर जाने को हो रहा था। रोज तीन किलोमीटर पैदल चलकर ऑफिस आती थी। डी ई ओ साहब से छुट्टी मांगने की उसकी हिम्मत नहीं हो रही थी। ऑफिस चैम्बर के पास कभी इधर जाती तो कभी उधर। मन में उथल-पुथल हो रही थी। आखिर में उसने रोहिणी बघेल के पास अपनी बात रख ही दी।

"मैं कुछ नहीं कर सकती इसके बारे में। मैं क्यों बात करूँ तुम्हारी छुट्टी के लिए। मेरी क्या गरज पड़ी है? जाओ साहब से बात करो।" मिसेज़ रोहिणी बघेल मुँह बिचकाती हुई बोली। तभी डी ई ओ चैम्बर की कालबेल बजी। यशोदा बाई अंदर गयी। अनुराग ठाकुर जी मुस्कुराते हुए बोले- "मैंने तुम्हारी पूरी बातें सुन ली यशोदा बाई। तुम्हें छुट्टी चाहिए ना... पर क्यों ?आज ऐसी क्या बात है भाई ? हमें भी बताओ।"

"सर! आज मेरे स्वर्गीय बेटे का जन्मदिन है। पिछले साल कोरोना के चलते गुजर गया सर। घर पर बहू मेरी राह देख रही होगी। आज मुझे जल्दी घर जाना था सर। मुझे छुट्टी दे देते, तो अच्छा होता।" यशोदा बाई आवाज में नमी थी।

यशोदा बाई की बात सुनकर अनुराग ठाकुर जी पल भर खामोश रहे। फिर बोले- "जाओ...यशोदा बाई आज तुम्हारी छुट्टी।" फिर तुरन्त यशोदा बाई घर के लिए निकल ही रही थी कि अनुराग ठाकुर जी बोले- "आज मेरा भी बर्थडे है यशोदा; पर मेरी माँ नहीं है। मुझे विश नहीं करोगी ? मैं भी तो तुम्हारे बेटे जैसा हूँ।" फिर यशोदा बाई के आशीष के करकमल उठ गये। क्षण भर के लिए आफिस में भावुकतापूर्ण वातावरण बना रहा।

हेड क्लर्क मिसेज़ रोहिणी बघेल के चेहरे पर ईर्ष्या की बदरी छा रही थी।

टीकेश्वर सिन्हा "गब्दीवाला'

लेखक परिचय : व्याख्याता (अंग्रेजी)

शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय - घोटिया, जिला - बालोद (छत्तीसगढ़)

पुस्तक समीक्षा

मैं कैसे हँसू (कहानी संग्रह)
लेखक: सुशांत सुप्रिय

समीक्ष्य कृति - मैं कैसे हँसू (कहानी संग्रह),
समीक्षा आलेख - कठिन समय का दस्तावेज - मैं कैसे हँसू
प्रकाशक : अंतिका प्रकाशन प्रा. लि.
प्रकाशन वर्ष : 2019
आई. एस. बी. एन. संख्या : 978-81-937713-7-2
मूल्य : 350/- मात्र

समीक्षक: - सुषमा मुनीन्द्र

सुपरिचित रचनाकार सुशांत सुप्रिय के सद्यः प्रकाशित कहानी संग्रह 'मैं कैसे हँसू में याद रखने लायक पच्चीस कहानियाँ हैं। सुशांत अपनी पुस्तकों में भूमिका या आत्मकथ्य प्रायः नहीं लिखते। शायद इनका मानना है जो कहना है कहानियों में कह दिया है जिसका मूल्यांकन पाठक कर लेंगे। सचमुच। पुस्तक में मूल्यांकन करने के लिये बहुत कुछ है। इतने विषय, प्रसंग, स्थितियाँ, घटनायें, सूत्र हैं कि एक वृहत्तर समय की मौजूदगी दर्ज होती है। सुशांत सुप्रिय एक खबर या विचार मात्र पर किस्सागोई शैली में ऐसी सुदृढ़ बुनावट-बनावट के साथ कहानी रच देते हैं कि स्थिति-परिस्थिति-मनःस्थिति के कारण और कारक दोनों स्पष्ट हो जाते हैं। कहानियों का फैलाव गाँव, कस्बे, नगर, महानगर, ब्रम्हाण्ड तक जाता है। कहानियों में उस अतीत का वैभव है जब जमींदार होते थे, लाट साहब, राय बहादुर जैसी उपाधियाँ होती थीं, पेड़, पुष्प, पवन, पानी, पर्यावरण (शुद्ध) की प्रचुरता होती थी, तो आज का वह कठिन समय भी है जब जालसाजी, मक्कारी, करोड़ों के घपले, बदनियत, बदहाल कानून और व्यवस्था, असामाजिक तत्वों के उपद्रव, आतंकवादी हमले विचार और कर्म में आ गये फर्क के कारण असुरक्षा और भय का माहौल है।

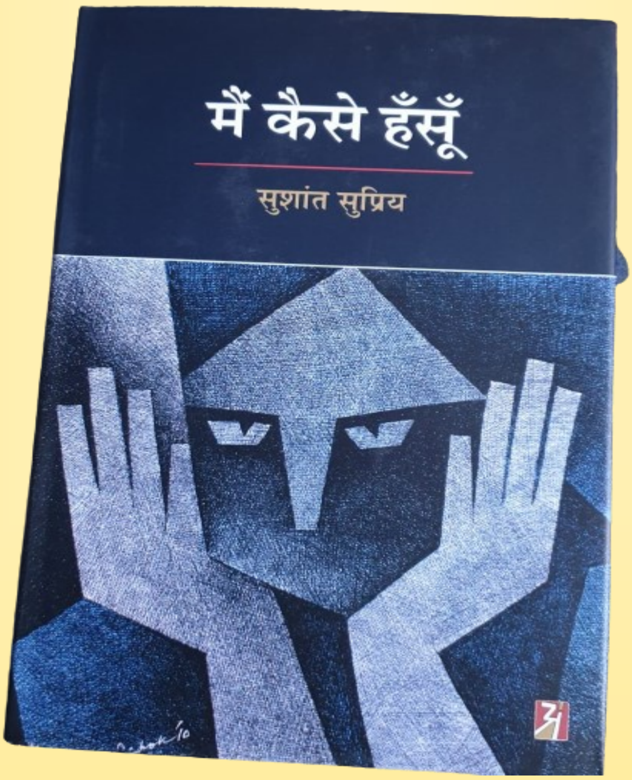

"यह इक्कीसवीं सदी का दूसरा दशक था जब देश के अय्याश वर्ग के पास अथाह सम्पत्ति थी, वह ऐश कर रहा था जबकि मेहनतकश वर्ग भूखा मर रहा था (कहानी - मैं कैसे हँसू)।" जैसी स्थिति सुशांत सुप्रिय को अधीर करती है। वे बहुत कुछ हड़पने वाले साधन सम्पन्न लोगों और देसीपन लिये साधनहीन लोगों के मध्य ऐसी आवाजाही बनाना चाहते हैं जब उभय पक्ष को उनका प्राप्य मिले। हम जानते हैं चापलूसी, चाटुकारिता उत्कर्ष पर है। रिश्ते-नाते स्वार्थ से प्रेरित हैं। धन और पद का दुरुपयोग हो रहा है। राजनीति और धर्म में फरेब आ गया है। ऐसी मनुष्य विरोधी चेष्टाओं और खतरनाक इरादों ने नींद में खलल और सपनों में भय भर दिया है "अक्सर सपनों में मुझे चिथड़ों में लिपटा एक बीमार भिखारी नजर आता है जिसके बदन पर कई घाव होते हैं, जो बेतहाशा खाँस रहा होता है .... देखते ही देखते वह बीमार भिखारी मेरे देश के नक्शे में बदल जाता है (कहानी - मैं कैसे हँसू)।" ये पंक्तियाँ भयावह पटल नहीं बनाना चाहतीं बल्कि लेसन देती हैं कि यदि चाह लें तो अब भी प्रतिबद्ध सोच और संवेदना का पुनर्जागरण हो सकता है। रोबोट में बदलते जा रहे लोगों को कर्तव्य की ओर उन्मुख किया जा सकता है।

संग्रह की अधिकांश कहानियाँ प्रथम पुरुष में लिखी गई हैं। जो बिना लाग लपेट के इस सहजता से आरम्भ होती हैं मानो बतकही की जा रही है "रेलगाड़ी के इस डिब्बे में वे चार हैं जबकि मैं अकेला हूँ। वे हट्टे-कट्टे हैं, मैं कमजोर सा। वे लम्बे-तगड़े हैं, मैं औसत कद-काठी का ....(कहानी - वे)।" इसी सहजता से हमारी दैनन्दिनी में आता जा रहा विरोध, अवरोध, प्रतिरोध व्यक्त हुआ है "गाँधी जी के विचारों को लोग नहीं अपनाना चाहते। उनकी तस्वीर जरूर हर नेता, अधिकारी के कक्ष और सरकारी संस्थानों में लगी रहती है। (कहानी - हे राम)।" कहानी 'हे राम' के भागीरथ प्रसाद और कहानी 'कबीरदास' के कबीरदास टोले-मोहल्ले में फैले कूड़े-करकट को तो हटाते ही हैं, वैचारिक प्रदूषण को भी खत्म करना चाहते हैं लेकिन लोग इनसे प्रेरित नहीं होते वरन इन्हें पागल और सिरफिरा मान कर क्रूर उपहास करते हैं कि इनके लिये पागलखाना उपयुक्त स्थान है। विडम्बना है लोग स्वयं निष्क्रिय बने रहते हैं, यदि कोई सामाजिक हित में कर्तव्य करे तो उसे हताश करते हैं। इसलिए दंगे, उपद्रव, अशांति, आगजनी, आतंकवादी गतिविधियाँ इस तरह बढ़ती जा रही हैं कि तृतीय विश्व युद्ध का ख्याल आने लगा है। वस्तुतः कोई भी काल खण्ड दंगों से मुक्त नहीं रहा। "श्रीकांत जिस दिन अठारह साल का हुआ उन्मादियों ने अयोध्या में बाबरी मस्जिद गिरा दी। देश में दंगे होने लगे। .... उसके पिता जब अठारह साल के थे 1975 में देश में इमरजेंसी लगी। दंगे होने लगे। .... 1947 के दंगों में दादा अठारह के थे। परदादा ने 1919 में हुआ जलियाँ वाला हत्याकांड देखा।" विरासत, दाग, हत्यारे और फिर अंधेरा आदि कहानियों में दंगों के कारण और कारक स्पष्ट होते चलते हैं।

‘दाग’ का खालिस्तान का मूवमेंट चला रहा जसवीर, सुरिंदर को अपने समूह में भर्ती कर लेता है। सुरिंदर (पुलिस का मुखबिर है) की सूचना पर जसवीर और कई सरदारों को मुठभेड़ में पुलिस मार गिराती है। सुरिंदर की आत्मा उसे जीवन भर धिक्कारती है कि जिस जसवीर ने कभी उसकी जान बचाई थी उसने उस जसवीर के साथ गद्दारी की। ‘हत्यारे’ के राकेश शर्मा को रजत शर्मा समझ कर गुंडे मारते-पीटते हैं। यह वस्तुतः राकेश शर्मा है ज्ञात होने पर उसे धमका कर चले जाते हैं। देश और देश के बाहर बनती ऐसी हिंसक स्थितियों से तृतीय विश्व युद्ध की आशंका को बल मिलता है। “इतने दिनों से यहाँ सूरज नहीं उगा। चारों ओर घुप्प अंधेरा है। सूरज की गर्मी के बिना ठंड बढ़ती जा रही है। .... परमाणु युद्ध की वजह से धरती पर बहुत समय के लिये न्यूक्लियर विंटर आ जोयगी। सारे जीव-जंतु, पेड़-पौधे नष्ट हो जायेंगे। .... हवा जहरीली होती जा रही है। चारों ओर कड़वा धुँआ फैला हुआ है। पीने का पानी बदबूदार हो गया है। उबालकर पीने के बावजूद हमें उल्टी हो रही है .... मेरी मम्मी ने मरे हुये बच्चे को जन्म दिया। उसके हाथ-पैर नहीं थे .... यह परमाणु हथियारों के इस्तेमाल से होने वाले रेडिएशन की वजह से हुआ ....।” यदि शांति की ओर वापसी न की गई तो कोई गजब नहीं कहानी ‘और फिर अँधेरा’ की चकित बल्कि आक्रांत करती यह विभीषिका भविष्य की व्याख्या बन जाये। वस्तुतः संग्रह का विषय वैविध्य चकित करता है। कहानी ‘एक दिन अचानक’ का कथा नायक और ‘लौटना’ की कथा नायिका लाइफ सपोर्ट सिस्टम पर हैं लेकिन मृत्यु को पराजित कर जीवन में लौटते हैं। ‘भूकम्प’ की मलबे में दबी ग्यारह साल की मीता मृत्यु को पराजित नहीं कर पाती। तीन दिन तक क्रेन की प्रतीक्षा कर दम तोड़ देती है। ‘एक उदास सिम्फनी’ और ‘इंडियन काफ्का’ में घर-बाहर उपेक्षा और मानसिक प्रताड़ना से गुजरते बेरोजगार युवकों की अस्थिरता, छटपटाहट, हताशा इस तरह व्यक्त हुई है “समय मुझे बिताता जा रहा है। मैं यूँ ही व्यतीत हो रहा हूँ। मेरा होना भी जैसे एक नहींपन में बदलता जा रहा है .... सिगरेट मुझे कश-कश पी रही है .... जीवन के कैलेण्डर के एक और दिन ने मुझे खर्च कर लिया है।” ‘छुई मुई’ में उच्च व निम्न वर्ग का आदिम विभेद है। पारिवारिक-सामाजिक दबाव के वशीभूत कथा नायक बचपन में निम्न वर्ग के बच्चों की मदद नहीं कर पाता पर बड़ा होकर एन0जी0ओ0 स्थापित कर उनके उत्थान का यत्न करता है। ‘चिकन’ का बड़ी रुचि से चिकन खरीदने

लेखक: सुशांत सुप्रिय
मैं कैसे हँसू (कहानी संग्रह)

आया जिंदर कत्ल होने जा रहे मुर्गे की आँखों में कातरता अैर जीने की चाह (भले ही वह दड़बे का जीवन है) को देख कर चिकन खरीदना स्थगित कर देता है। 'बाध' का सूरज मल्टिपल पर्सनालिटी डिसआर्डर से पीड़ित है। दिन में सभ्य व्यक्ति, रात में बाघ की भाँति आचरण करता है। सूरज मनोचिकित्सक से उपचार करा रहा है तथापि उसके आचरण से प्रेमिका भ्रमित है उससे विवाह करे अथवा नहीं। कहानी में पाँच अंत दिये गये हैं कि पाठक किस अंत को सर्वाधिक उचित समझते हैं। मेरी राय में पाठक "मनोचिकित्सक की दी गई दवाईयों की वजह से सूरज बिल्कुल ठीक हो जाता है। निशि के साथ सुखमय जीवन व्यतीत करने लगता है .... (105)।" जैसे धनात्मक अंत की अनुशंसा कर उस पारिवारिक-सामाजिक-मानवीय मूल्यों को मजबूत करना चाहेंगे जिनको इस संग्रह की कहानियाँ बचाये रखना चाहती हैं।

हमला, स्पर्श, उड़न तश्तरी, किताबों की आल्मारियाँ, पूर्वज और पिता आदि आभासी संसार की कहानियाँ हैं। इनका फंतासी शिल्प देखने जेसा है। कहानियाँ काल्पनिक हैं पर किस्सागोई शैली में कथ्य-कल्पना की जो संगति बैठाई गई है वह कहानियों को रोचक बना देती है। 'किताबों की आल्मारियाँ ....' में उन आल्मारियों में आग लग जाती है जिसमें पुस्तक प्रेमी पिता की पुस्तकें और पाण्डुलिपियाँ रखी हैं। आग बुझाते हुये पिता अदृश्य हो जाते हैं। फिर कभी दिखाई नहीं देते "क्या आल्मारियों में आग लगने पर वहाँ समय में कोई गुप्त पोर्टल, कोई रहस्यमय कपाट खुल गया था जिनसे होकर पिता अपनी विरल किताबों और पाण्डुलिपियों समेत पूर्वजों की दुनिया और समय में सुरक्षित चले गये? (109)।" जैसी जबरदस्त फंतासी और भी कहानियों में है पर समीक्षा की एक स्थान सीमा होती है। सभी की चर्चा सम्भव नहीं है। इतना जरूर कहूँगी सुशांत सुप्रिय कम शब्दों में सम्पूर्ण ध्येय को व्यक्त कर देते हैं। इसीलिये कहानियाँ आकार में छोटी हैं पर प्रयोजन बड़े हैं। कम शब्दों में ध्येय स्पष्ट करने के लिये जो तराश और करीना अपरिहार्य है उसे सुशांत अच्छी तरह समझते हैं। यह उनका अपना ढंग है। अपनी व्याख्या है।

आशा है यह कहानी संग्रह कथा जगत को समृद्ध करेगा।

समीक्षक: - सुषमा मुनीन्द्र
संपर्क: द्वारा श्री एम. के. मिश्र, जीवन विहार अपार्टमेन्ट, फ्लैट नं. 7, द्वितीय तल, महेश्वरी स्वीट्स के पीछे, रीवा रोड, सतना (म.प्र.)-485001

अनुवाद

आगंतुक

(फ़्रांसीसी कहानी का हिंदी अनुवाद)

मूल लेखक : अल्बेयर कामू

अनुवाद : सुशांत सुप्रिय

स्कूल-मास्टर ने उन दोनों लोगों को चढ़ाई चढ़ कर अपनी ओर आते हुए देखा। एक आदमी घोड़े पर सवार था, जबकि दूसरा आदमी पैदल चल रहा था। अभी उन्होंने पहाड़ी के किनारे बने उस विद्यालय तक पहुँचने के लिए खड़ी चढ़ाई से जूझना शुरू नहीं किया था। पर वे बर्फ़ और पत्थरों से भरे दूर तक फैले हुए उस वीरान पठार में मुश्किल से आगे बढ़ पा रहे थे। समय-समय पर घोड़ा लड़खड़ा जाता था। हालाँकि अभी वह उनके आने की आवाज़ें नहीं सुन सकता था, पर वह घोड़े की नासिकाओं से निकल रही भाफ़ देख सकता था। ऐसा लग रहा था कि कम-से-कम उनमें से एक आदमी इस इलाक़े को जानता था। वे रास्ते पर चल रहे थे हालाँकि वह रास्ता कई दिनों पहले ही गंदी उजली बर्फ़ की तह के नीचे ग़ायब हो चुका था। स्कूल-मास्टर ने हिसाब लगाया कि उन दोनों को पहाड़ी पर चढ़ने में आधा घंटा लगेगा। मौसम ठंडा था, और वह स्वेटर पहनने के लिए स्कूल के भीतर चला गया।

उसने ठंडी, ख़ाली कक्षा को पार किया। ब्लैक-बोर्ड पर चार अलग-अलग रंगों से बनाई गई फ़्रांस की चार नदियाँ पिछले तीन दिनों से अपने मुहानों की ओर बह रही थीं। आठ महीनों के सूखे के बाद दिसम्बर के मध्य में बारिश हुए बिना अचानक बर्फ़ पड़ गई थी, और पठार पर छितराए गाँवों में रहने वाले लगभग बीस छात्रों ने स्कूल आना बंद कर दिया था। मौसम ठीक होने पर वे फिर से आने लगेंगे। दारू अब पठार के पूर्व में, कक्षा के बग़ल में स्थित केवल उसी कमरे को गरम करता था जो रहने का कमरा था। उसकी खिड़की से दक्षिण दिशा का नज़ारा भी मिलता था। उस दिशा में स्कूल उस बिंदु से कुछ किलोमीटर दूर था जहाँ पठार दक्षिण दिशा की ओर ढलान में बदल जाता था। अच्छे मौसम में वहाँ से पर्वत-श्रृंखला का बैंगनी आकार दिखता था जहाँ की घाटी रेगिस्तान की ओर खुलती थी।

खुद को कुछ गरम महसूस करते हुए दारू उस खिड़की के पास आ गया जहाँ से उसने पहली बार उन आगंतुकों को देखा था। अब वे वहाँ से नहीं दिख रहे थे। इसलिए उन्होंने ज़रूर चढ़ाई चढ़ ली होगी। आकाश अब उतना अन्धकारमय नहीं लग रहा था क्योंकि बर्फ़बारी रात में ही रुक गई थी। सुबह एक गंदली रोशनी से भरी हुई थी, जो बादलों की परत हटने के बाद भी अधिक रोशन नहीं हुई। दोपहर दो बजे के समय भी ऐसा लग रहा था जैसे अभी सुबह ही हुई थी। किंतु यह उन तीन दिनों से कहीं बेहतर था जब लगातार फैले घुप्प अँधेरे में ज़ोरदार बर्फ़बारी हो रही थी और हवा के थपेड़ों की वजह से कक्षा के दरवाज़े आपस में बज रहे थे।

तब दारू को एक लम्बा समय अपने कमरे में बिताना पड़ा था। वह केवल दड़बे में बंद मुर्ग़ियों को दाने देने या कुछ कोयला लाने के लिए ही वहाँ से बाहर निकला था। क़िस्मत से उत्तर में मौजूद सबसे पास के गाँव तद्जिद से उसकी रसद लेकर आने वाला ट्रक इस बर्फ़ीले तूफ़ान के आने से दो दिन पहले आ कर सारा सामान दे जा चुका था। अड़तालीस घंटे बाद वह फिर लौटेगा।

इसके अलावा किसी घेरेबंदी का मुक़ाबला करने के लिए भी उसके पास पर्याप्त खाद्य-सामग्री मौजूद थी। दरअसल उसका छोटा-सा कमरा गेहूँ की बोरियों से भरा हुआ था जिसका भंडार प्रशासन ने उन छात्र-छात्राओं के बीच वितरण के लिए छोड़ रखा था जिनके परिवार सूखे से प्रभावित हुए थे। असल में वे सभी पीड़ित थे क्योंकि वे सभी ग़रीब थे। प्रतिदिन दारू बच्चों में रसद बाँटता था। लेकिन ख़राब मौसम वाले इन दिनों में वे इससे वंचित थे। शायद उन बच्चों में से किसी का पिता आज दोपहर आ पाए। तब वह उसे उनकी खाद्य-सामग्री दे पाएगा। उन्हें अगली फ़सल तक ऐसे ही गुज़ारा करना था। अब गेहूँ से लदे जहाज़ फ़्रांस से आ रहे थे। सबसे बुरे दिन अब ख़त्म हो चुके थे। लेकिन उस ग़रीबी को, धूप में भटकते उन चिथड़े पहने लोगों की भीड़ को भूलना मुश्किल होगा। महीने-दर-महीने पूरा पठार अंगारे की तरह जला हुआ लग रहा था, जैसे पूरी धरती सूख और सिकुड़ कर वाक़ई झुलस गई हो। यहाँ तक कि पैरों के नीचे आने वाला हर कंकड़-पत्थर भुरभुरा होकर धूल में बदलता जा रहा था। तब भेड़ें हज़ारों की तादाद में मर गई थीं, और लोगों की जानकारी में आए बिना यहाँ-वहाँ कुछ लोग भी मर गए थे।

इतनी ग़रीबी की तुलना में वह अपने सुदूर स्कूल के कमरे में किसी मठवासी की तरह रहता था। हालाँकि अपने कठोर जीवन में जो थोड़ा उसके पास था, वह उससे संतुष्ट था। वहाँ वह अपनी सफ़ेदी की गई दीवारों, छोटे से पलंग , बदरंग ताक़, कुएँ तथा खाद्य-सामग्री और पानी की अपनी साप्ताहिक रसद के साथ किसी सामंत जैसा महसूस करता था। और अचानक बिना किसी चेतावनी के, बिना बारिश के हुए यह बर्फ़बारी आ धमकी। यह पूरा इलाक़ा ऐसा ही था- बिना लोगों के, रहने के लिए बेहद निर्मम। इससे मामला और गड़बड़ हो जाता था। लेकिन दारू का तो जन्म ही यहीं हुआ था। बल्कि अन्य कहीं वह खुद को निर्वासित महसूस करता था।

वह स्कूल के अपने कमरे के बाहर सामने के छज्जे पर निकल आया। दोनों आगंतुक अब ढलान की चढ़ाई के आधे रास्ते पर पहुँच गए थे। उसने घुड़सवार की पहचान बाल्ड्यूकी के रूप में कर ली - वह बूढ़ा पुलिसवाला जिसे वह बहुत पहले से जानता था। बाल्ड्यूकी के हाथ में रस्सी का सिरा था जिसके दूसरे सिरे से एक अरब व्यक्ति बँधा हुआ था। बँधे हाथों वाला वह अरब सिर झुकाए बाल्ड्यूकी के पीछे-पीछे चल रहा था। पुलिसवाले ने उसकी दिशा में अभिवादन के रूप में अपना हाथ हिलाया किंतु दारू उसका उत्तर नहीं दे सका क्योंकि वह घिसा हुिआ नीला चोगा पहने अरब को ध्यान से देखने में व्यस्त था।

उस अरब ने पैरों में सैंडल पहनी हुई थी। उसके पैर भारी ऊन से बनी जुराबों से ढँके हुए थे। उसने अपने सिर पर एक छोटा-सा कपड़ा भी बाँध रखा था। अब वे दोनों धीरे-धीरे पास आ रहे थे। बाल्ड्यूकी अपने घोड़े को नियंत्रित करते हुए आगे बढ़ रहा था ताकि साथ चल रहे अरब को घोड़े की वजह से चोट न लग जाए।

थोड़ा क़रीब आने पर बाल्ड्यूकी ने चिल्ला कर कहा, “एल एमेयूर से तीन किलोमीटर की यात्रा करने में एक घंटा लग गया! “दारू ने कोई उत्तर नहीं दिया। मोटा स्वेटर पहने वह नाटा और चौड़ा लग रहा था। वह उन्हें ऊपर चढ़ कर अपने पास आते हुए देखता रहा। अरब बंदी ने एक बार भी अपना सिर उठा कर ऊपर की ओर नहीं देखा था। जब वे दोनों चबूतरे के पास पहुँचे तो दारू बोला, “नमस्ते ! भीतर आ कर गरम हो जाइए। “बाल्ड्यूकी घोड़े से ऐसे उतरा जैसे उसे दर्द हो रहा हो। पर उसने रस्सी का पकड़ा हुआ सिरा नहीं छोड़ा। वह स्कूल-मास्टर को देखकर अपनी कड़ी मूँछों के बीच में से मुस्कुराया। उसकी छोटी-छोटी गहरी आँखें उसके धूप में साँवले हो गए माथे में धँसी हुई थीं, और उसके मुँह के चारों ओर झुर्रियाँ थीं जिनकी वजह से वह सतर्क और सावधान दिख रहा था। दारू ने उसके हाथ से घोड़े की लगाम ले ली और घोड़े को छप्पर में ले गया। फिर वह उन दोनों के पास लौट आया। वे दोनों स्कूल के अहाते में उसी के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। वह उन दोनों को अपने कमरे में ले गया। “मैं जा कर कक्षा के कमरे को गरम कर देता हूँ। हम वहाँ ज़्यादा आराम महसूस करेंगे।”

जब वह वापस अपने कमरे में लौटा तो उसने बाल्ड्यूकी को सोफ़े पर बैठा हुआ पाया। उसने अपने हाथ से बँधी वह रस्सी खोल कर अलग कर ली थी जिसके दूसरे सिरे से अरब बँधा हुआ था। अरब अब स्टोव के पास वाली जगह में घुस कर बैठ गया था। उसके हाथ अभी भी रस्सी से बँधे थे। उसके सिर पर लपेटा हुआ कपड़ा अब थोड़ा पीछे खिसक गया था, और वह खिड़की की ओर देख रहा था। सबसे पहले दारू का ध्यान केवल उसके बड़े होंठों की ओर गया जो मोटे, चिकने और हब्शियों जैसे लग रहे थे। लेकिन उसकी नाक बिल्कुल सीधी थी, और उसकी आँखें गहरी और उत्तेजना से भरी हुई थीं। सिर पर पीछे खिसक गए कपड़े की वजह से उसका हठी ललाट दिख रहा था। ठंडे मौसम की मार झेल रही उसकी त्वचा फीकी और मलिन हो चुकी थी। उसके पूरे चेहरे पर बेचैनी और विद्रोह का भाव था, जो दारू को तब स्पष्ट हुआ जब अरब ने अपना चेहरा उसकी ओर मोड़ा और सीधा उसकी आँखों में देखा। “आप दूसरे कमरे में जाइए, “स्कूल-मास्टर ने कहा। “मैं आप के लिए पुदीने की चाय बनाता हूँ।” “शुक्रिया, “बैल्ड्यूकी ने कहा।” उफ़, क्या-क्या काम करने पड़ते हैं! इसी वजह से मैं जल्दी सेवानिवृत्त होना चाहता हूँ।” और अपने बंदी को अरबी भाषा में सम्बोधित करते हुए वह बोला, “तुम भी चलो।” अरब धीरे से उठ खड़ा हुआ और रस्सी से बँधी अपनी कलाइयाँ पकड़े हुए वह भी कक्षा वाले कमरे में चला गया ।

चाय के साथ ही दारू एक कुर्सी भी उठा लाया। लेकिन बाल्ड्यूकी पहले से ही कक्षा की सबसे क़रीब स्थित मेज़ के साथ लगी कुर्सी पर बैठा हुआ था, और अरब खिड़की और मेज़ के बीच स्थित स्टोव के सामने मौजूद शिक्षक के मंच से टेक लगा कर, पाल्थी मारकर बैठा हुआ था। जब दारू ने बंदी की ओर चाय का गिलास बढ़ाया तो वह उसके बँधे हुए हाथ देखकर ठिठक गया। “शायद इसके बँधे हाथ खोले जा सकते हैं।” “ज़रूर, “बाल्ड्यूकी ने कहा। “वे केवल यात्रा के लिए बाँध दिए गए थे। “वह अपनी जगह से उठने लगा। लेकिन दारू चाय के गिलास को ज़मीन पर रखकर पहले ही उस अरब बंदी के पास घुटने के बल बैठ गया था। बिना एक भी शब्द कहे वह अरब बंदी उसे अपनी उत्तेजित आँखों से देखता रहा। जब उसके हाथों में बँधी रस्सी खोल दी गई तो उसने अपनी कलाइयों को आपस में रगड़ा, चाय का गिलास उठाया और उस तेज़ गरम पेय को छोटी-छोटी घूँटों में जल्दी-जल्दी सुड़कने लगा।

“बढ़िया , “दारू ने कहा। “और आप कहाँ जा रहे हैं।”

“यहाँ, बेटा।”

“अच्छा! और क्या आप यहाँ रात में रुकेंगे?”

“नहीं। मुझे तो वापस एल एमेयूर लौटना होगा। और तुम इस बंदी को टिन्गुइट ले जा कर अधिकारियों के हवाले करोगे। वहाँ के पुलिस मुख्यालय में इसकी प्रतीक्षा की जा रही है।”

बाल्ड्यूकी एक दोस्ताना मुस्कान देते हुए दारू को देख रहा था।

“आख़िर माजरा क्या है?” स्कूल-मास्टर ने पूछा। “क्या आप मुझसे मज़ाक़ कर रहे हैं?”

“नहीं , बेटा। मुझे यही आदेश दिया गया है।”

“कैसा आदेश? मैं यह काम नहीं ... , “दारू ठिठकते हुए बोला, “मेरा मतलब है, यह मेरा काम नहीं है।”

“क्या ! इसका क्या मतलब है ? युद्ध के समय लोगों को हर प्रकार का काम करना पड़ता है।”

“तो मैं युद्ध की घोषणा की प्रतीक्षा करूँगा।” बाल्ड्यूकी ने सिर हिलाया।

“ठीक है। किंतु आदेश तो दिए जा चुके हैं। और वे तुमसे सम्बन्धित हैं। लगता है, कुछ-न-कुछ चल रहा है। सम्भावित विद्रोह की बात हो रही है। एक तरह से देखा जाए तो हम सब युद्ध की तैयारी में ही हैं।”

दारू के चेहरे पर अब भी हठ का भाव था।

"देखो, बेटा, "बाल्ड्यूकी बोला। "तुम मुझे अच्छे लगते हो और तुम्हें यह समझना चाहिए। एल एमेयूर में हमारे छोटे से विभाग में हम केवल दर्जन भर पुलिसवाले हैं जबकि हमें इस पूरे इलाक़े में गश्त लगानी होती है। इसलिए मुझे जल्दी ही वापस लौटना होगा। मुझे इस बंदी को तुम्हें सौंप कर बिना देर किए वापस आ जाने का आदेश दिया गया है। तुम्हें इसे कल टिन्गुइट लेकर जाना ही होगा।

तुम्हारे जैसे पहाड़ी आदमी के लिए बीस किलोमीटर की दूरी तय करना मुश्किल नहीं होगा। इसे सौंप देने के बाद तुम्हारी ज़िम्मेदारी ख़त्म हो जाएगी। तुम वापस अपने विद्यार्थियों और अपने आरामदेह जीवन में लौट आओगे।"

उन्हें दीवार के पीछे बँधे घोड़े के हिनहिनाने और पैर पटकने की आवाज़ें सुनाई दे रही थीं। दारू खिड़की से बाहर देख रहा था। अब मौसम वाक़ई साफ़ हो रहा था और वह बर्फ़ीला पठार अब रोशन हो रहा था। जब सारी बर्फ़ पिघल जाएगी तो सूरज की गर्मी एक बार फिर अपने शबाब पर होगी, और उस पथरीले मैदान को लगभग झुलसा देगी। कई-कई दिनों तक एक जैसा रहने वाला आकाश उस वीरान इलाक़े पर अपनी सूखी रोशनी डालता रहेगा - एक ऐसा बंजर इलाक़ा जिसका इंसान से कोई संबंध नहीं।

बाल्ड्यूकी की ओर मुड़ कर उसने पूछा, "इस अरब ने क्या किया था?" और इससे पहले कि पुलिसवाला कुछ कह पाता, उसने आगे पूछा, "क्या यह फ़्रांसीसी भाषा बोल लेता है?"

"नहीं। एक शब्द भी नहीं। हम इसे एक महीने से ढूँढ़ रहे थे पर उन्होंने इसे छिपा रखा था। इसने अपने चचेरे भाई की हत्या कर दी थी।"

"क्या इसके मन में हमारे ख़िलाफ़ भी विद्वेष है?"

"मुझे तो ऐसा नहीं लगता। लेकिन आप पक्के तौर पर कुछ नहीं कह सकते।"

"इसने अपने चचेरे भाई की हत्या क्यों की?"

"पारिवारिक झगड़ा था। शायद फ़सल के बँटवारे या उधार को लेकर दोनों में विवाद था। यह सब स्पष्ट नहीं है। मुद्दे की बात यह है कि इसने हंसिये से अपने चचेरे भाई की हत्या कर दी। जैसे एक भेड़ का सिर एक झटके से काट दिया जाता है, वैसे।"

बाल्ड्यूकी ने गले के काटे जाने का इशारा किया। अरब का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हुआ , और उसने उन्हें चिंताग्रस्त निगाहों से देखा। अचानक दारू को सभी घृणा करने वाले रक्त-पिपासुओं

पर तेज़ ग़ुस्सा आया।

लेकिन स्टोव पर चढ़ी केतली में चाय के खौलने का संगीत बज रहा था। दारू ने बाल्ड्यूकी को और चाय दी, थोड़ा ठिठका, और फिर उसने उस अरब को भी और चाय दी। अरब ने दूसरी बार भी अपनी बाँहें ऊपर उठा कर लालायित होते हुए चाय पी। इससे उसका चोगा उसके धड़ पर से खिसक गया और स्कूल-मास्टर ने देखा कि वह पतला-दुबला किंतु सुगठित छाती वाला आदमी था।

"शुक्रिया, लड़के, "बाल्ड्यूकी ने कहा। "अब मैं चलता हूँ।"

अपनी जेब से एक छोटी-सी रस्सी निकाल कर वह उठ कर उस अरब की ओर गया।

"आप क्या कर रहे हैं? "दारू ने नीरस आवाज़ में पूछा। बाल्ड्यूकी ने क्षुब्ध होकर उसे रस्सी दिखाई।

"इसकी ज़रूरत नहीं।"

बूढ़ा पुलिसवाला ठिठक गया। "ख़ैर! अब यह तुम्हारे हाथ में है। क्या तुम्हारे पास हथियार है?"

"हाँ मेरे पास एक बंदूक़ है।"

"कहाँ?"

"ट्रंक में।"

"तुम्हें वह हथियार अपने बिस्तर के पास रखना चाहिए।"

"क्यों? मुझे किसी बात का डर नहीं है।"

"तुम पागल हो , बेटा ! यदि कोई विद्रोह हुआ, तो कोई भी सुरक्षित नहीं रहेगा। हम सभी उसी स्थिति में होंगे।"

"मैं अपनी रक्षा कर लूँगा। उनके यहाँ तक पहुँचने से पहले मुझे पता चल जाएगा।"

बाल्ड्यूकी हँसने लगा। फिर अचानक उसकी मूँछों ने उसके सफ़ेद दाँतों को ढँक लिया।

"तुम्हें लगता है, तुम्हारे पास समय होगा? ठीक है। मैं ठीक यही कह रहा था। तुम हमेशा से थोड़े 'हिले हुए' रहे हो! इसीलिए तुम मुझे अच्छे लगते हो। मेरा बेटा भी ऐसा ही था।"

लेकिन यह कहते हुए उसने अपना रिवाल्वर निकाल कर मेज पर रख दिया।

“इसे रखो। मुझे यहाँ से एल एमेयूर तक जाने के लिए दो हथियार नहीं चाहिए।”

रिवाल्वर मेज के चमकीले काले रंग की पृष्ठभूमि में दीप्त लग रहा था। जब पुलिसवाला उसकी ओर मुड़ा तो स्कूल-मास्टर की नासिकाओं में चमड़े और घोड़े के पसीने की मिली-जुली गंध आई।

“सुनिए, बाल्ड्यूकी, “दारू ने अचानक कहा। “यह पूरा मामला मुझे बेहद घृणित लग रहा है। ख़ास करके आपका यह अरब बंदी मुझमें जुगुप्सा जगा रहा है। लेकिन मैं इसे नहीं सौंपूँगा। चाहे मुझे इसके लिए लड़ना ही क्यों न पड़े। पर मैं वह नहीं करूँगा।”

बूढ़ा पुलिसवाला उसे कठोर निगाहों से देखता हुआ उसके सामने खड़ा रहा।

“तुम बेवक़ूफ़ी कर रहे हो। “उसने धीरे से कहा। “मुझे भी यह सारा मामला पसंद नहीं। बरसों की आदत के बावजूद किसी आदमी को रस्सी से बाँधना अच्छा नहीं लगता, बल्कि आप ऐसा करते हुए शर्मिंदा महसूस करते हैं, हाँ, शर्मिंदा। लेकिन आप किसी को भी क़ानून तोड़ने की इजाज़त नहीं दे सकते हैं।”

“मैं इसे नहीं सौंपूँगा, “दारू ने दोबारा कहा।

“यह एक आदेश है, बेटा।, और मैं इसे दोहरा रहा हूँ।”

“ठीक है। आप उन लोगों के सामने भी वही दोहरा दीजिएगा जो मैंने आपसे कहा: मैं इसे नहीं सौंपूँगा।”

बाल्ड्यूकी ने सोचने का भाव बनाने की कोशिश की। उसने अरब बंदी और दारू की ओर देखा। अंत में उसने फ़ैसला कर लिया।

“नहीं, मैं उन्हें कुछ नहीं बताऊँगा। तुम जो करना चाहो, करो। मैं तुम पर कोई दोष नहीं लगाऊँगा। मुझे इस बंदी को तुम्हें सौंपने का आदेश दिया गया है, और मैं यही कर रहा हूँ। और अब तुम मेरे लिए केवल इस काग़ज़ पर हस्ताक्षर कर दोगे।”

“इसकी कोई ज़रूरत नहीं। मैं इस बात से इंकार नहीं करूँगा कि आप इसे मेरे हवाले करके गए थे।”

“मेरे साथ यह घटिया हरकत मत करो। मुझे पता है, तुम सच बोलोगे। तुम इसी इलाक़े के रहने वाले हो और तुम अपनी ज़बान के पक्के आदमी हो। लेकिन नियम यही है कि तुम्हें हस्ताक्षर करने होंगे।”

दारू ने मेज की दराज़ खोली और उसमें से बैंगनी स्याही की एक चौकोर बोतल निकाली। फिर उसने लकड़ी के कलमदान से अपनी ख़ास क़लम निकाली और काग़ज़ पर दस्तख़त कर दिए। पुलिसवाले ने उस काग़ज़ को सावधानी से मोड़कर अपने बटुए में रख लिया। फिर वह दरवाज़े की ओर मुड़ा।

"मैं आपको बाहर तक छोड़ कर आता हूँ। "दारू बोला।

"नहीं, "बाल्ड्यूकी ने कहा।" अब विनम्र होने की कोई ज़रूरत नहीं। तुमने मेरी बेइज़्ज़ती की है।"

उसने बिना हिले-डुले अपनी जगह बैठे अरब बंदी को देखा, चिड़चिड़े भाव से नाक चढ़ाई और दरवाज़े की ओर मुड़ गया।

"चलता हूँ, बेटा, "उसने कहा। कमरे से बाहर निकलकर उसने अपने पीछे दरवाज़ा बंद कर दिया।"

अचानक बाल्ड्यूकी खिड़की के बाहर नज़र आया और फिर ग़ायब हो गया। बर्फ़ ने उसके क़दमों की आहट को दबा लिया। दीवार के दूसरी ओर घोड़े के चलने-फिरने की आवाज आई और कई मुर्ग़ियाँ डर के मारे पंख फड़फड़ा कर उड़ गईं। कुछ पल बाद घोड़े को लगाम से पकड़ कर ले जाता हुआ बाल्ड्यूकी दोबारा खिड़की के बाहर नज़र आया। वह छोटे-से टीले की ओर बढ़ा और घोड़े को अपने पीछे-पीछे ले कर जाते हुए आँखों से ओझल हो गया। एक बड़े पत्थर के नीचे लुढ़कने की आवाज़ सुनी जा सकती थी। दारू अब बंदी की ओर बढ़ा जो इस पूरे समय बिना हिले-डुले उसी को देख रहा था।

"रुको, "स्कूल मास्टर ने अरबी भाषा में कहा और सोने वाले कमरे की ओर बढ़ा। दरवाज़े के पास पहुँच कर उसने पुनर्विचार किया। वह मेज़ तक गया और उसने वहाँ पड़ा रिवाल्वर उठा कर अपनी जेब में डाल लिया। फिर बिना पीछे देखे वह अपने कमरे में चला गया।

कुछ देर तक वह अपने दीवान पर लेट कर आकाश को बादलों से ढँकते हुए देखता रहा और चारों ओर व्याप्त सन्नाटे को सुनता रहा। यही वह सन्नाटा था जो युद्ध के बाद यहाँ उसके शुरुआती दिनों में उसके लिए बेहद कष्टप्रद रहा था। उसने ऊपरी पठारों को रेगिस्तान से अलग करते पहाड़ के निचले भाग में बसे इस छोटे-से शहर में अपनी नियुक्ति के लिए अनुरोध किया था। वहाँ उत्तर की ओर हरी और काली तथा दक्षिण की ओर गुलाबी और चमेलिया रंग की पथरीली दीवारें अनंत ग्रीष्म की सीमा इंगित करती थीं। उसे तो और अधिक उत्तर में पठार पर स्थित एक जगह के पद पर नियुक्त किया गया था।

शुरू में इस पथरीले, वीरान इलाक़े का एकाकीपन और सन्नाटा झेलना उसके लिए भारी पड़ रहा था। कभी-कभार ज़मीन पर दिखने वाले खाँचे खेती-बाड़ी का आभास दिलाते थे, किंतु उन्हें भवन-निर्माण के लिए मुनासिब एक ख़ास क़िस्म के पत्थर को ज़मीन से निकालने के लिए खोदा गया था। यहाँ केवल पत्थरों को निकालने के लिए ही खुदाई की जाती थी। कई खोखली जगहों में मिट्टी की जो पतली परत जम जाती थी, उसे गाँवों के नगण्य बाग़ों को समृद्ध करने के लिए खरोंच लिया जाता था। सब कुछ इसी तरह था: नंगी चट्टानें इस क्षेत्र के तीन-चौथाई हिस्से को ढँके हुए थीं। शहर बसते थे, फलते-फूलते थे और ग़ायब हो जाते थे; लोग आते थे, आपस में प्रेम करते थे या झगड़ते थे और अंत में काल-कवलित हो जाते थे। इस वीरान रेगिस्तान में न उसकी, न ही उसे सौंप दिए गए आगंतुक की हस्ती का कोई मायना था। किंतु दारू जानता था कि उन दोनों में से वाक़ई कोई भी इस रेगिस्तान के बाहर नहीं रह सकता था।

जब वह अपनी जगह से उठा तो उसे कक्षा वाले कमरे में से कोई आवाज नहीं सुनाई दी। वह कल्पना मात्र से उपजी इस विशुद्ध प्रसन्नता से हैरान हो गया कि अरब बंदी सम्भवत: भाग गया होगा और वह अब अकेला होगा और उसे कोई निर्णय नहीं लेना पड़ेगा। लेकिन अरब अब भी वहीं मौजूद था। वह केवल स्टोव और मेज़ के बीच मौजूद जगह में लेट गया था। उसकी आँखें खुली थीं और वह छत को घूर रहा था। इस स्थिति में उसके मोटे होंठ विशिष्ट रूप से दिखाई दे रहे थे , जिसकी वजह से ऐसा लग रहा था जैसे वह मुँह फुलाए हुए हो। "आओ," दारू बोला। अरब उठ खड़ा हुआ और उसके पीछे चलने लगा। सोने वाले कमरे में पहुँच कर स्कूल-मास्टर ने मेज के पास और खिड़की के नीचे पड़ी कुर्सी की ओर इशारा किया। बिना दारू पर से अपनी निगाहें हटाए अरब उस कुर्सी पर बैठ गया।

"क्या तुम्हें भूख लगी है?"

"हाँ", अरब बंदी ने कहा।

दारू ने दो लोगों के खाने के लिए सामान निकाला। उसने कड़ाही में थोडा तेल डाला और आटे को गूँध कर उसे केक की शक्ल दी। फिर उसने सिलिंडर में मौजूद गैस से चलने वाला चूल्हा जलाया। जब केक बन रहा था, वह बाहर छप्पर की ओर गया और वहाँ से पनीर, अंडे, खजूर और गाढ़ा दूध ले आया। केक बन जाने के बाद वह उसे ठंडा होने के लिए खिड़की के पास रख आया। फिर उसने गाढ़े दूध में थोडा पानी मिलाया और उसे चूल्हे पर गरम कर लिया। उसके बाद उसने अंडों को फेंट कर उनका ऑमलेट बना लिया। काम करते हुए उसके दाएँ पाकेट में रखा रिवाल्वर बर्तन से टकराया। बर्तन नीचे रखकर वह कक्षा वाले कमरे में गया और उसने रिवाल्वर को मेज की दराज़ में रख दिया। जब वह वापस कमरे में आया, तो शाम का झुटपुटापन रात में बदल रहा था।

उसने बत्ती जलाई और अरब के लिए खाना निकालने लगा। “खाओ, “उसने कहा। अरब ने केक का एक टुकड़ा उठाया, उत्सुकता से उसे अपने मुँह तक ले गया और फिर वहीं रुक गया।

“और आप?” उसने पूछा।

“तुम्हारे बाद मैं भी खा लूँगा।”

अरब के मोटे होंठ थोड़े खुल गए। वह पहले तो झिझका लेकिन फिर उसने दृढ़ता के साथ केक खाना शुरू किया। खाना ख़त्म करके उसने स्कूल-मास्टर की ओर देखा।

“क्या आप जज हैं?”

“नहीं। मैं केवल कल तक तुम्हें अपने पास रखे हुए हूँ।”

“आप मेरे साथ खाना क्यों खा रहे हैं?”

“मुझे भूख लगी है।”

अरब अब चुप हो गया। दारू उठा और वह छप्पर में से एक मुड़ने वाली चारपाई ले आया। उसने स्टोव और मेज के बीच में वह चारपाई बिछा दी। अब वह चारपाई उसकी अपनी चारपाई के नब्बे डिग्री के कोण पर थी। कोने में मौजूद ताक पर कुछ अख़बार पड़े थे। वहीं पड़े एक सूटकेस में से उसने दो कम्बल निकाले और उन्हें तह करके उसने अलग-अलग बिस्तरों पर रख दिया। फिर वह रुका, जैसे अब उसके पास करने के लिए कुछ न हो। वह अपने बिस्तर पर बैठ गया। अब वाक़ई करने के लिए कुछ भी नहीं था। उसे केवल इस अरब बंदी पर निगाह रखनी थी। उसने ध्यान से अरब की ओर देखा। उसने कल्पना की कि उसका अपना चेहरा ग़ुस्से से भरा हुआ था। लेकिन वह ऐसी कल्पना भी नहीं कर पाया। उसे केवल अरब बंदी की स्याह किंतु चमकती आँखें और उसका पशु-सरीखा मुँह ही दिखाई दे रहे थे।

“तुमने उसे क्यों मारा? “उसने ऐसी आवाज में पूछा जिसका विद्वेषी लहजा खुद उसे हैरान कर गया।

अरब दूसरी ओर देखने लगा।

“वह भाग रहा था। मैंने उसके पीछे जा कर उसे पकड़ लिया। “अरब बोला। उसने अपनी निगाहें उठा कर दारू को देखा और उन निगाहों में दुखी प्रश्न-चिह्न अटके थे। “अब वे मेरे साथ क्या करेंगे?”

"क्या तुम्हें डर लग रहा है?" यह सुनकर उसकी देह ऐंठ गई और वह दूसरी ओर देखने लगा।

"क्या तुम्हें अपने इस कृत्य पर खेद है?"

अरब हैरानी से उसकी ओर देखता रहा। ज़ाहिर है, उसे बात समझ में नहीं आई थी। दारू की खीझ बढती जा रही थी। पर उसकी भारी देह दोनों बिस्तरों के बीच फँसी हुई थी जिसकी वजह से वह खुद को एक कष्टकर स्थिति में और संकोच से भरा हुआ महसूस कर रहा था।

"वहाँ लेट जाओ, "उसने अधीर होकर कहा। "वही तुम्हारा बिस्तर है।"

अरब अपनी जगह से नहीं हिला। उसने दारू से पूछा - "मुझे बताइए!"

स्कूल-मास्टर ने उसकी ओर देखा।

"क्या पुलिस अधिकारी कल वापस आएगा?

"पता नहीं।"

"क्या आप भी हमारे साथ चलेंगे?"

"मैं नहीं जानता। क्यों?"

बंदी अपनी जगह से उठा और बिस्तर पर पड़े कम्बल पर लेट कर उसने अँगड़ाई ली। उसके पैर खिड़की की दिशा में थे। बिजली के बल्ब की तेज़ रोशनी सीधी उसकी आँखों में पड़ रही थी। इस चौंध की वजह से उसने अपनी आँखें बंद कर लीं।

"क्यों? "बिस्तर के बग़ल में खड़े दारू ने अपना प्रश्न दोहराया।

चौंधिया देने वाली रोशनी के बीच अरब बंदी ने अपनी आँखें खोलीं और अपनी पलकें झपकाने का प्रयास किए बिना वह दारू की ओर देखने लगा।

"आप भी हमारे साथ चलिए।" उसने कहा।

मध्य-रात्रि के समय भी दारू जगा हुआ था। अपने वस्त्र उतार कर वह बिस्तर पर सोने गया था। आम तौर पर वह निर्वस्त्र होकर सोता था। किंतु आज जब अचानक उसे इस नग्नता का अहसास हुआ तो वह ठिठका। उसने स्वयं को असुरक्षित महसूस किया और उसे दोबारा अपने कपड़े पहन लेने का लालच होने लगा। फिर उसने अपने कंधे उचकाए। कुछ भी हो, अब वह बच्चा नहीं था।

यदि ज़रूरत पड़ी तो वह अपने विपक्षी को धूल चटाने में सक्षम था। अपने बिस्तर से वह उसे देख सकता था। तेज़ रोशनी में अब भी अपनी आँखें बंद किए हुए वह बिना हिले-डुले पीठ के बल लेटा हुआ था। जब दारू ने बत्ती बंद की तो अचानक अँधेरा जैसे सघन होकर जम गया। धीरे-धीरे कमरे के भीतर और खिड़की के बाहर सितारों से रहित रात का दिल जैसे फिर से धड़कने लगा। उस अँधेरे का अभ्यस्त होने पर जल्दी ही स्कूल-मास्टर को अपने पैताने की ओर बंदी की देह की हल्की आकृति दिखाई देने लगी। अरब अब भी बिना हिले-डुले बिस्तर पर लेटा हुआ था, लेकिन उसकी आँखें खुली हुई प्रतीत हो रही थीं। स्कूल के इर्द-गिर्द हल्की हवा चल रही थी। शायद वह बादलों को उड़ा ले जाएगी।

रात में हवा की गति बढ़ गई। बाहर मुर्ग़ियाँ फड़फड़ाईं और फिर चुप हो गईं। अरब ने करवट बदल कर दारू की ओर अपनी पीठ कर ली। दारू को लगा जैसे उसने अरब का कराहना सुना। फिर उसने आगंतुक के भारी साँसों के सामान्य होने की आवाज़ सुनी। वह अपने इतने क़रीब उसकी साँसों की आवाज सुनकर सोचता रहा, जिसके कारण वह सो नहीं सका। पिछले एक साल से वह इस कमरे में अकेला ही सो रहा था। सोते समय किसी और की उपस्थिति की आदत न होने की वजह से आज उसे मुश्किल हो रही थी। पर उसे इस बात से भी परेशानी हो रही थी कि यह उपस्थिति उस पर भाईचारे जैसा कुछ थोप रही थी। इसके बारे में वह जानता तो था पर अभी के हालात में वह उसे मानने से इंकार कर रहा था। चाहे वे सैनिक हों या बंदी, जो लोग एक ही कमरे में रहते हैं, उनमें एक अजीब गठजोड़ विकसित हो जाता है। जैसे अपने वस्त्रों के साथ अपने कवच उतार देने के बाद वे हर शाम अपनी भिन्नताओं के बावजूद स्वप्न और थकान की प्राचीन बिरादरी में आपस में मिलते-जुलते हैं। लेकिन दारू को यह विचार पसंद नहीं आया और उसने इसे झटक दिया। सोना भी तो ज़रूरी था।

कुछ समय बाद जब अरब ने करवट बदली, स्कूल-मास्टर की आँखों में तब भी नींद नहीं थी। जब बंदी अपने बिस्तर पर ज़्यादा हिलने-डुलने लगा तो चौकन्ने स्कूल-मास्टर की देह तन गई। अरब अपने बाज़ू के बल उठ रहा था और उसकी हरकतें नींद में चलने वाले व्यक्ति जैसी लग रही थीं। बिस्तर पर सीधा बैठ कर वह बिना दारू की ओर सिर घुमाए चुपचाप प्रतीक्षा करने लगा, जैसे वह ध्यान से कुछ सुन रहा हो। दारू बिना हिले-डुले लेटा रहा। उसे याद आया कि उसका रिवाल्वर तो मेज की दराज़ में पड़ा था। बेहतर होगा कि वह जल्दी ही कुछ करे। लेकिन वह केवल बंदी पर निगाह रखे रहा। बंदी अरब ने फिसलन भरी हरकत के साथ अपने पैर नीचे फ़र्श पर रखे, प्रतीक्षा की और फिर धीरे-धीरे उठ कर खड़ा होने लगा। दारू उसे बुलाने ही वाला था जब उसने अरब को दबे पाँव चल कर बाहर जाता हुआ पाया। वह कमरे के अंत में स्थित दरवाज़े से बाहर छप्पर की ओर जा रहा था। उसने सावधानी से दरवाज़े की सिटकनी खोली और दरवाज़े को अपने पीछे वापस खींच कर

बिना बंद किए बाहर निकल गया। दारू अपनी जगह से नहीं हिला था। "तो वह भाग रहा है , "उसने सोचा।" अच्छा है, मुझे भी छुटकारा मिलेगा! "फिर भी वह ध्यान से सुनता रहा। मुर्ग़ियों के फड़फड़ाने की आवाज नहीं आ रही थी; आगंतुक ज़रूर पठार पर चला गया होगा। तब पानी की हल्की आवाज़ उसके कानों में पड़ी। वह नहीं समझ पाया कि बाहर क्या हो रहा था। तभी अरब बंदी की आकृति दोबारा दरवाज़े पर दिखी। उसने भीतर आ कर धीरे से दरवाज़ा बंद किया और चुपचाप अपने बिस्तर पर आ कर बैठ गया। यह देख कर दारू ने बंदी की ओर पीठ कर ली और थोड़ी देर बाद उसे नींद आ गई। हालाँकि बाद में नींद की गहराइयों में उसे ऐसा लगा जैसे उसे स्कूल के चारों ओर दबे क़दमों की आहट सुनाई दे रही हो। "मैं सपना देख रहा हूँ! मैं सपना देख रहा हूँ! "उसने नींद में ही खुद को यह बात दोहराई और सोता चला गया।

जब उसकी नींद खुली, आसमान साफ़ था; अध-खुली खिड़की में से साफ़, ठंडी हवा भीतर कमरे में आ रही थी। अरब कम्बल के भीतर सिकुड़ कर सोया हुआ था। उसका खुला मुँह नरम पड़ गया था। लेकिन जब दारू ने उसे हिलाया तो वह चौंक कर उठा और वनैली आँखों से दारू को घूरने लगा जैसे उसने उसे कभी नहीं देखा हो। उसके चेहरे पर भय का ऐसा भाव था कि दारू पीछे हट गया। "डरो नहीं। यह मैं हूँ। अब तुम्हें नाश्ता करना चाहिए। "अरब ने हामी में सिर हिलाया। हालाँकि बाहरी रूप से उसके चेहरे पर शांति का भाव लौट आया था पर भीतर कहीं वहाँ रिक्तता और उदासीनता के भाव भी मौजूद थे।

कॉफ़ी तैयार हो गई थी। दोनों ने बिस्तर पर साथ बैठकर कॉफ़ी पी और केक का नाश्ता किया। फिर दारू अरब को छप्पर के पास ले गया। और उसने उसे वह टोंटी दिखाई जहाँ वह नहाता-धोता था। वह वापस अपने कमरे में गया जहाँ उसने कम्बलों को तह किया और खाट को मोड़ दिया। उसने अपना बिस्तर ठीक किया और कमरे को व्यवस्थित किया। फिर वह कक्षा वाले कमरे से हो कर खुली छत पर आ गया। नीले आकाश में सूर्योदय हो रहा था। समूचा निर्जन पठार एक कोमल किंतु चमकीली रोशनी में नहा रहा था। पहाड़ों की चोटियों पर जगह-जगह बर्फ़ पिघल रही थी। बर्फ़ के नीचे से चट्टानें दोबारा उभरने वाली थीं। पठार के किनारे पर दुबके अपने स्कूल की छत से स्कूल-मास्टर ने समूचे सुनसान इलाक़े को देखा। उसे बाल्ड्यूकी का ख़्याल आया। उसने उसे आहत कर दिया था क्योंकि उसने बाल्ड्यूकी को वहाँ से इस तरह वापस भेजा था जैसे वह उससे कोई वास्ता नहीं रखना चाहता था। वह अब भी पुलिसवाले के विदा होते समय कहे गए संवाद सुन सकता था और बिना इसकी वजह जाने उसने स्वयं को एक अजीब ख़ालीपन से भरा तथा असुरक्षित महसूस किया। उसी पल स्कूल के दूसरी ओर से बंदी के खाँसने की आवाज़ आई। लगभग न चाहते हुए भी दारू ने वह आवाज़ सुनी और फिर ग़ुस्से में आ कर उसने एक पत्थर फेंका जो बर्फ़ में दब जाने से पहले हवा में सीटी बजाता हुआ गया। बंदी अरब का मूर्खतापूर्ण अपराध दारू में घृणा उत्पन्न कर रहा था, लेकिन

उसे सुरक्षाकर्मियों को सौंप देना मर्यादा के ख़िलाफ़ था। इसके बारे में सोचने मात्र से वह बेइज़्ज़ती महसूस करने लगता था और उसने उसी समय अपने उन लोगों को कोसा जिन्होंने उस अरब को उसके पास भेजा था। उसने उस अरब को भी अपशब्द कहे जिसने हत्या करने की हिम्मत की थी, किंतु बच कर नहीं भाग सका था। दारू उठा और खुली छत पर गोल-गोल टहलने लगा। फिर वह बिना हिले-डुले रुका और अंत में वापस स्कूल के कमरे में चला गया।

छप्पर के सीमेंट के फ़र्श पर आगे की ओर झुक कर अरब अपनी दो उँगलियों से दाँत साफ़ कर रहा था। दारू ने उसकी ओर देखा और कहा, "आओ।" वह बंदी के आगे चलते हुए वापस कमरे में गया। उसने अपने स्वेटर के ऊपर एक जैकेट पहन ली और फिर अपने जूते पहने। वह तब तक खड़ा होकर प्रतीक्षा करता रहा जब तक अरब ने भी अपने सिर पर साफ़ा नहीं बाँध लिया और जूते नहीं पहन लिये। वे कक्षा वाले कमरे में गए और स्कूल-मास्टर ने बाहर जाने वाला रास्ता दिखाते हुए कहा , "आगे चलो।" लेकिन अरब अपनी जगह से नहीं हिला। "मैं आ रहा हूँ।" दारू ने कहा। अब अरब बाहर की ओर चल दिया। दारू वापस अपने कमरे में गया और उसने बिस्कुट, खजूर और थोड़ी चीनी एक छोटे-से थैले में रख ली। कक्षा वाले कमरे से होकर बाहर जाते हुए वह एक पल के लिए अपनी मेज़ के पास ठिठका, फिर चौखट को पार करके उसने ताला लगा कर दरवाज़ा बंद कर दिया। "वही रास्ता है।" वह पूरब दिशा की ओर चल पड़ा और बंदी उसके पीछे चलने लगा। लेकिन स्कूल-भवन से कुछ दूर पहुँचने पर दारू को लगा जैसे उसने अपने पीछे कोई आवाज़ सुनी। वह कुछ क़दम पीछे आया और उसने स्कूल-भवन के चारों ओर के दृश्य का मुआयना किया। वहाँ कोई नहीं था। बिना कुछ समझे अरब उसे देखता रहा। "चलो, चलें," दारू ने कहा।

वे घंटा भर चलते रहे और चूना-पत्थर के एक नुकीले शिखर के पास रुक कर उन्होंने आराम किया। बर्फ़ बहुत तेज़ी से पिघल रही थी और धूप छोटे-छोटे गड्ढों में जमा पानी को सुखाती जा रही थी। इस तरह पठार की सफ़ाई तेज़ी से हो रही थी। धीरे-धीरे पठार जैसे सूख कर हवा की तरह बजने लगा। जब उन्होंने दोबारा चलना शुरू किया, तब ज़मीन पर उनकी पदचाप सुनाई देने लगी। थोड़ी-थोड़ी देर बाद उनके आगे के रास्ते पर से किसी चिड़िया के चहचहाने की ख़ुशनुमा आवाज सुनाई दे जाती। दारू सुबह की क्वाँरी हवा और रोशनी को जैसे अपने भीतर शिद्दत से भर रहा था। उस जाने-पहचाने विस्तार को देखकर वह बेहद प्रसन्नता का अनुभव कर रहा था। वह पूरा भू-भाग जैसे सूर्य के गुम्बद के नीचे अब लगभग समूचा ही पीत वर्ण में रंगा हुआ लग रहा था। वे एक घंटे तक और चलते रहे और फिर दक्षिण दिशा की ओर उतरने लगे। वे टूटे हुए पत्थरों वाली एक जगह पर पहुँचे, जहाँ से पठार पूरब दिशा की ओर ढलान की शक्ल ले लेता था। आगे नीचे की ओर जा कर समतल भूमि थी जहाँ कुछ लमछड़ वृक्ष उगे हुए थे। उसके आगे दक्षिण में मौजूद पथरीला इलाक़ा पूरे भू-दृश्य को एक अव्यवस्थित रूप प्रदान कर रहा था।

दारू ने दोनों दिशाओं की ओर निगाह डाली। क्षितिज पर केवल आकाश नज़र आ रहा था। पूरे इलाक़े में एक भी आदमी नहीं दिख रहा था। वह अरब की ओर मुड़ा जो भाव-शून्य ढंग से उसी को देख रहा था। दारू ने अपने हाथ में पकड़ा छोटा थैला उसकी ओर आगे बढ़ाया। "यह ले लो," उसने कहा। "इस थैले में खजूर, डबलरोटी और चीनी है। तुम दो दिनों तक इनसे गुज़ारा कर लोगे। और यह एक हज़ार फ़्रांक भी रख लो।" अरब ने वह छोटा थैला और धन-राशि रख ली। लेकिन वह अपने हाथों को छाती पर इस तरह से मोड़े रहा जैसे उसे नहीं मालूम हो कि उसे जो कुछ भी दिया जा रहा है, उसके साथ क्या करना है।

"अब देखो," स्कूल-मास्टर ने पूर्व दिशा की ओर इशारा करते हुए कहा, "वह रास्ता टिन्गुइट की ओर जाता है। वहाँ पहुँचने में तुम्हें दो घंटे लगेंगे। टिन्गुइट में प्रशासन और पुलिसवाले तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।" थैले और धन-राशि को अब भी सीने से लगाए हुए अरब ने पूर्व दिशा की ओर देखा। दारू ने उसे कोहनी से पकड़ कर उग्रता से दक्षिण दिशा की ओर मोड़ दिया। जिस ऊँचाई पर वे खड़े थे , उसके नीचे से एक पगडंडी उस दिशा में जा रही थी। "पठार से हो कर जाती हुई यह पगडंडी ही रास्ता है। एक दिन तक इस रास्ते पर चलने के बाद तुम्हें घास के मैदान और शुरुआती ख़ानाबदोश दिखेंगे। वे तुम्हें अपने क़ानून के मुताबिक़ शरण दे देंगे। "अरब अब दारू की ओर मुड़ गया था और उसका चेहरा संत्रस्त और आतंकित लग रहा था। "सुनिए," उसने कहा। दारू ने अपना सिर हिलाया: "नहीं, तुम चुप रहो। अब मैं तुम्हें छोड़ कर जा रहा हूँ।" अरब की ओर पीठ करके उसने स्कूल की दिशा में दो लम्बे क़दम लिए। उसने ठिठक कर बिना हिले-डुले खड़े अरब की ओर देखा और फिर आगे चल पड़ा। अगले कुछ मिनट तक उसने मुड़ कर पीछे नहीं देखा और उसे केवल ठंडी ज़मीन पर पड़ती अपने क़दमों की प्रतिध्वनि ही सुनाई पड़ती रही। हालाँकि पल भर बाद वह पीछे मुड़ा। अरब अब भी पहाड़ के किनारे खड़ा था। उसके हाथ अब उसकी छाती से हट कर बग़ल में लटक रहे थे, और वह अब भी स्कूल-मास्टर की ओर देख रहा था। दारू को अपने गले में कुछ फँसता हुआ-सा प्रतीत हुआ। लेकिन उसने व्यग्रता से गाली दी, अनिश्चित रूप से हाथ हिलाया और दोबारा अपने रास्ते पर चल पड़ा। थोड़ी दूर जा कर वह रुका और उसने फिर मुड़ कर देखा। अब पहाड़ पर कोई नहीं था।

दारू ठिठका। सूरज अब आकाश में बहुत ऊपर आ गया था और उसके सिर पर तेज़ धूप की गरमी का असर हो रहा था। स्कूल-मास्टर वापस पहाड़ की ओर लौटने लगा। पहले उसकी चाल अनिश्चित थी लेकिन बाद में वह दृढ़ क़दमों से लौटने लगा। जब वह उस छोटे-से पहाड़ पर पहुँचा तब उसकी देह पसीने से भीग चुकी थी। वह तेज़ी से पहाड़ पर चढ़ा और ऊपर पहुँच कर रुक गया। उसकी साँस चढ़ गई थी। दक्षिण की ओर स्थित पथरीले मैदान नीले आकाश की पृष्ठभूमि में सुस्पष्ट दिख रहे थे।

लेकिन पूरब दिशा में स्थित मैदान से पहले से ही गरम भाफ़ उठती हुई दिखाई दे रही थी। और उस हल्के धुँधलके में जब दारू ने पाया कि अरब धीरे-धीरे कारागार तक ले जाने वाली सड़क पर आगे बढ़ता चला जा रहा था, तो उसका मन भारी हो गया।

कुछ समय बाद अपने स्कूल भवन की कक्षा की खिड़की के सामने खड़े हो कर स्कूल-मास्टर समूचे पठार पर पड़ती साफ़ रोशनी को देख रहा था, लेकिन उसका ध्यान कहीं और था। उसके पीछे ब्लैक-बोर्ड पर बनी फ़्रांस की घुमावदार नदियों वाले नक़्शे पर किसी के भोंडे ढंग से बड़े-बड़े अक्षरों में लिख दिए गए शब्द उसने अभी-अभी पढ़े थे - "तुमने हमारे भाई को पुलिसवालों को सौंप दिया। तुम्हें इसकी क़ीमत अदा करनी पड़ेगी।" दारू ने आकाश, पठार और उसके आगे समुद्र तक फैली अदृश्य भूमि की ओर देखा। हालाँकि उसे इस इलाक़े से बहुत प्यार था, पर इस पूरे भू-भाग में वह नितांत अकेला था।

सुशांत सुप्रिय

भाषा विभाग: (पंजाब) तथा प्रकाशन विभाग (भारत सरकार) द्वारा रचनाएँ पुरस्कृत। कमलेश्वर.स्मृति (कथाबिंब) कहानी प्रतियोगिता (मुंबई) में लगातार दो वर्ष प्रथम पुरस्कार। स्टोरी.मिरर. कॉम कथा.प्रतियोगिता, 2016 में कहानी पुरस्कृत। साहित्य में अवदान के लिए साहित्य- सभा, कैथल (हरियाणा) द्वारा 2017 में सम्मानित, आकाशवाणी, दिल्ली से कई बार कविता व कहानी - पाठ प्रसारित। लोक सभा टी.वी के "साहित्य संसार"कार्यक्रम में जीवन व लेखन सम्बन्धी इंटरव्यू प्रसारित। लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली में अधिकारी।

निवास: A-5001, गौड़ ग्रीन सिटी, वैभव खंड, इंदिरापुरम्, ग़ाज़ियाबाद- 201014

(उ.प्र.) मो : 8512070086, ईमेल : sushant1968@gmail.com

www.epradeep.com ई - प्रदीप अंक : 02 वर्ष : 01 अप्रैल-जून 2021
साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक ऑनलाइन त्रैमासिक - पत्रिका

जीवित बचे रह जाने का रहस्य

गुणशेखर

दिनांक 10-06-2021,समय 10 बजकर 09 मिनट, दिन-गुरुवार।

आज वटसावित्री पूजन है। पारंपरिक शैली में केवल मेरी बड़ी बहू यह पूजन कर पाई क्योंकि उसके आवास के पास वट वृक्ष है। छोटी वाली तो वैक्सीन लगवाने के कारण अब तक बुखार में तप रही थी। अभी उसका बुखार उतरा है।

इस उपवास से मुझे मेरे बेटों के श्रम और समर्पण की स्मृति और सघन हो आई। यह मेरे बच्चों के अथक अनवरत श्रम, निर्लोभ समर्पण और सतर्कता के साथ-साथ उनकी अति संवेदनशील आत्मीयता का प्रतिफल है कि आप लोगों के मध्य हूँ। सावित्री तो यमराज से बस एक बार अपने पति को लाई थी। इन्होंने तो अपने पिता को दो-दो बार यमराज से दो-दो हाथ करके अपने पुरुषार्थ और विवेक बल पर वापस लिया है।

24 मार्च 2021 को मैं और मेरी पत्नी ने कोविड-शील्ड का पहला टीका लगवाया। उस दिन मुझे ऐसा लगा था कि अब अपना जीवन पचास प्रतिशत सुरक्षित हो गया है। मैंने दूसरा टीका 24 अप्रैल 2021 को लगवाया। लेकिन दूसरा टीका श्रीमती जी को नहीं लगवाया क्योंकि बच्चों ने साफ़ तौर पर मना कर दिया था। इसका कारण उन्हें एक दिन पहले बुखार आ जाना था। लेकिन मैंने स्वयं के लिए ज़िद पकड़ ली और लगवा लिया। उसी दिन दोनों का आर टी पी सी आर का सैम्पल भी दे दिया। परीक्षा परिणाम से भी अधिक भय और उत्सुकता मिश्रित इन्तज़ार में दो दिन बिताए।

26 अप्रैल 2021 को स्वास्थ्य विभाग से फोन आया कि श्रीमती गायत्री बेन शर्मा पॉजिटिव हैं। लेकिन उनकी सी टी वैल्यू का पता नहीं चला। फटा-फट जाकर रिपोर्ट लाया तो बहुत ज़्यादा डर नहीं लगा क्योंकि वह 25 था जोकि बहुत खतरनाक नहीं माना जाता। मेरी रिपोर्ट साफ़-साफ़ निगेटिव थी। इसलिए मैं तो निश्चिंत होकर पत्नी को आइसोलेशन में रखकर उनकी सेवा- सुश्रूषा में लग गया।

डिवाइन फैथ फेलोशिप सोसाइटी द्वारा प्रकाशित हिन्दी साहित्य की पत्रिका

टीका लगने के तीन दिन के भीतर मुझे भी बुखार आ गया। डॉक्टर को दिखाने गया तो उन्होंने टीके का बुखार बताया। जब पैरासीटामॉल से बुखार नहीं उतरा तो एक बार फिर स्वास्थ्य केंद्र गया और कहा कि एक बार और मेरा सैंपल ले लिया जाए। अस्पताल ने साफ़ मना कर दिया और मुझसे कहा गया कि अब 14 दिन बाद ही जाँच हो सकती है। मेरे बच्चे गुस्सा हुए कि कुछ काम प्राइवेट में भी करा लिया करें। मेरे छोटे बेटे ने घर पर ही जाँच वाले को बुला कर मेरा सैंपल दे दिया और वह पाजिटिव भी निकला।

अब बिना किसी अतिरिक्त विलंब के मेरा कोरोना का इलाज़ आरंभ हो गया। स्वास्थ्य विभाग की निगेटिव रिपोर्ट ने मेरा केस बिगाड़ा। वह इसलिए भी कि और बीमारियों की तरह कोरोना मौका नहीं देता। रिपोर्ट तीन से पाँच दिन में आती है। दो-तीन दिन मरीज़ खुद खा लेता है और दो-तीन दिन जाँच। इस तरह मरीज़ जब सीरियस हो जाता है तब उपचार शुरू होता है। इसलिए पूरी दुनिया का माहौल ही बदल गया है। इस माहौल पर सीधी के श्रीनिवास शुक्ल 'सरस' का शेर बहुत मौज़ूं लगता है कि-

"हाशिए में हँसी काफिए में कफ़न,
*हो गईं हैं दफ़न तालियाँ आजकल।"

दो-दो वैक्सीन लगवाने, तीन तीन मास्क पहनने (पहले दस रुपए वाला फिर घरेलू कपड़े का, उसके बाद एन -95) के बावज़ूद मैं बीमार क्यों पड़ा? इसका मुझे आश्चर्य है। लेकिन यह आश्चर्य कोरोना के बारे में ठीक नहीं है।

दोनों बेटों के अनथक श्रम, कभी ज़रूरत तो कभी बेज़रूरत की भागदौड़ के साथ लंबे और अति मँहगे इलाज़ के बाद पिछले महीने यानी 14 मई को आर टी पी सी आर निगेटिव आ गया। इस तरह मुझे कोरोना और अस्पताल से एक साथ मुक्ति मिली।

मेरी माँ रोज़ मेरा चेहरा देखने और मेरे बोल सुनने की इच्छा व्यक्त करती थी और रोज़ अशीशती थी कि, "भैया हमारि हियात तुमका लागि जाये।

"पत्नी की गीली और सूजी आँखें उसकी पीड़ा बताया करती थीं। बहिनें और बहनोई भी व्हाट्सऐप पर जब तक देख न लेते बेचैन रहते थे। मेरी बहुएँ मेरी बेटियाँ हैं जिन्हें मैंने उसी तरह रोते देखा है जैसे पिता की तक़लीफ़ पर बेटियाँ रोती हैं। इन्हीं के साथ भानजे -भांजी पोतियाँ, नातिनें, इष्ट मित्र और अन्य रिश्तेदार मेरे लिए बहुत बेचैन हुए हैं। मेरे घर आ जाने से सब खुश थे। इन सबकी खुशी में मेरी खुशी थी। मुझे उस समय इस बात की भी बेहद खुशी थी कि अब मेरे बेटे सो सकेंगे। अब तक दिन-रात घंटे-घंटे पर मेरा नाश्ता-खाना बनाती बहुएँ ठीक से साँस ले सकेंगी। मेरी माँ के झुर्रीदार उदास चेहरे पर खुशी की रेखाएँ उभर सकेंगी। पत्नी के होठों पर मुस्कान और आँखों में चमक आ सकेगी। इसीलिए घर वापस आकर बस यही लोकोक्ति बार-बार याद आ रही थी, "जान बची तो लाखों पाए। लौट के बुद्धू घर को आए।"

यह सुख ज़्यादा समय न टिका। दो-तीन दिन में ही भयावह सिर दर्द ने नई मुसीबत की ओर इशारा कर दिया तो फिर से अस्पताल पहुँच गए। जांचों पर जाँचें। ब्लड तो अस्पताल से ले जाते थे पर एम आर आई, एच आर सी टी की जांचों के लिए वहाँ तक जाना पड़ता था जो उस समय बहुत तकलीफ़देह लगता था। इन जांचों से कोई खास लाभ नहीं हुआ। पहले वाले जिस ई एन टी सर्जन ने फंगस का शक किया था वह शक भी झूठा सिद्ध हो रहा था। बाद में मेरे छोटे बेटे ने बड़े बेटे को शहर के एक वरिष्ठ सर्जन (ई एन टी) से समय लेने को कहा। ये हैं डॉ. प्रशांत देशाई उम्र 75 से 80 के मध्य। आपरेशनों की संख्या कई हज़ार में। जो काम बारह-बारह हज़ार लेने वाले अत्याधुनिक तकनीक वाले एम आर आई करने जैसे कीमती यंत्र न कर पाए, इन्होंने नाज़ल इंडोस्कोपी से वह फन्गस अर्ली स्टेज में ही खोज निकाला। इस तरह जब हमें कोरोना से मुक्ति मिली तो फंगस के फेर में आ गए थे।

अंतत: 21 मई को उन्होंने तीन और सर्जनों के साथ सूरत के सबसे मशहूर 'सूरत ई एन टी होस्पिटल' के ओ टी में मेरे ऑप्रेशन को अंज़ाम दिया। प्रात: 9 से 12 बजे तक चले इस ऑप्रेशन में फंगस को ऐसे छील कर निकाल दिया गया था जैसे कि हंसिए से गन्ने पर लिपटा फंगस छील कर उसे चूसने लायक बना दिया जाता है।

मेरे बेटों ने सब कुछ अपनी समझ बूझ और सामर्थ्य के बल पर किया। अगर ये समर्थ और उदार न होते और मैं या ये मेरे पैसों के भरोसे होते तो भी वही स्थिति होती जो बहुतों की हुई।

अचेतन या अर्धचेतन अवस्था होते हुए भी मेरा अंदाज़ा है कि दो-दो लाख रुपए जेबों में डाले मेरे बेटे हज़ारों किलोमीटर दवाओं के लिए भूखे-प्यासे दौड़े होंगे। यह कहना बेवकूफी होगी कि सारी दूरी पैरों पर चले लेकिन इतना ज़रूर चल डाले होंगे कि दूसरों के बच्चे जीवन भर में बाप के लिए उतना नहीं चले होंगे। जिनके बच्चे ऐसे हैं वे मुझे क्षमा करेंगे। कभी भी पूरी दुनिया एक साथ अच्छी या बुरी नहीं रही। हर दशरथ को राम नहीं मिलते लेकिन मिलते तो हैं।

अच्छे के साथ बुरे भी जन भी हमारे समाज में रहे हैं जैसे राम के साथ रावण और कृष्ण के साथ कंस। यह होना किसी काल में कोई आश्चर्य नहीं का विषय नहीं रहा है। ऐसे ही कुछ चिकित्सकों ने तो अपनी करुणा और संवेदना से न जाने कितनों को जीवन दिया तो इन्हीं में कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने पहले पैसे जमा कराए बिना मरीज़ को हाथ नहीं लगाया। चाहे सरकारी हों या प्राइवेट सभी बुरी तरह भरे थे। मेरे बेटों ने मेरे लिए प्राइवेट अस्पताल चुना इसके बावज़ूद पच्चीस दिन तक न मेरे बेटे सोए और न मैं। वे जब भी मेरे कमरे में आते मैं डर जाता कि कहीं इनको न हो जाए। इसलिए हाथ जोड़कर बाहर भेजता। मेरे संपर्क में ज़्यादा देर न रहें इसलिए जब भी वे मेरे कमरे में आते तो ज़्यादातर मैं उनसे कोई न कोई फ़रमाइश कर देता। वे उलटे पैर लेने दौड़ पड़ते। यह भी एक अत्याचार मैंने अपने बच्चों के साथ किया। रात में बारह या एक बजे तक प्राय: अस्पताल में रहते फिर चार से पाँच के बीच सुबह दूध, दलिया और चाय आदि लाते। अगर उन्हें देर तक रुके देखता तो कभी-कभी उन्हें फालतू चीज़ें भी लेने भेज देता ताकि वे मेरे संपर्क में कम से कम रहें। मेरे अनुमान से बेटों ने चालीस लाख से ऊपर खर्च कर दिए होंगे पर न कभी थके न हारे। न पछताए। कभी एक भी पैसा न अपनी माँ से माँगा और न मुझसे ही लिया। खैर! मैं तो किसी भी प्रकार के लेन-देन की स्थिति में ही न था।

सोमवार को जब इस लायक हुआ तो ज़िद करके बैंक गया। छोटे वाले से कहा कम से कम दस लाख तुम ले लो और पाँच बड़े को दे दो। इस पर उसका जवाब आँखें गीली कर गया कि, "जब आपने मेरा इलाज़ कराया था तो क्या कभी हमसे उसका खर्चा लिया था?" उसे बहुत कह-सुन कर बैंक चलने को राज़ी कर लिया।वहां पहुँचे तो पता चला कि पंद्रह दिन के मध्य अनेकश: पत्राचार के बाद सेविंग अकाउंट में बीस लाख स्थानांतरित भी हो गए हैं। उन्हें निकालने को प्रबंधक से कहा तो पता चला कि बैंक में पैसे ही नहीं हैं। संयोग से प्रबंधक जी मेरे मित्र थे नहीं तो कह देते कि फलाँ रोड पर इसकी दूसरी शाखा है उसमें (यू बी आई में) हमेशा पैसे रहते हैं। आप वहाँ चले जाओ। मेरे लिहाज़ में उन्होंने तीन-चार शाखाओं में पता किया। वहाँ भी पैसे नहीं थे। स्वभाव से भले और मित्र प्रबंधक ने मेरे लिए अपने एक और मित्र प्रबंधक से अपने-पन का दबाव डालकर कहा कि कृपया मदद करो तो उसने अपना आधा कैश इनको देने को कह दिया। इन्होंने अपने कैशियर को भेज कर 10 लाख मंगवा भी लिए। तीन घंटे बाद आए पैसों से मुझे खुशी हुई। पर यह खुशी ज़्यादा देर न टिकी अब पता चला कि किसी दूसरी शाखा से दो लाख से ज़्यादा निकाल ही नहीं सकते। लौटा तो कमज़ोर शरीर बुखार की जद में आ चुका था।

शायद ये सब नियम बैंकों में जमा किए जाने वाले पैसों में तेज़ी से गिरावट यानी तरलता (लिक्विडिटी) में कमी के कारण बनाए गए हैं या बनाए गए होंगे। लेकिन इन नियमों के चलते उसका क्या होगा जिसका मरीज़ एडवांस के अभाव में भर्ती नहीं किया जा रहा है याऑप्रेशन थियेटर में है और मंहगी दवाओं की ज़रूरत है। मैं सोच में पड़ गया कि आखिर इन बैंकों का पैसा गया कहाँ?

एक बार मैं दावे से फिर कहना चाहता हूँ कि अपने बच्चों के श्रम और समर्पण के कारण इस धरा धाम पर हूँ। केवल किसी डॉक्टर, भगवान या भगवती के कारण नहीं क्योंकि मेरा खुद का पैसा भी बचत खाते में तब आया जब मेरा 80 प्रतिशत से अधिक इलाज संपन्न हो चुका था। पैसा न हो तो इलाज़ कौन करेगा? कोई डॉक्टर किसी गरीब की गरीबी पर रीझ कर किसी मरीज़ का आपरेशन न करेगा।

अबकी स्वास्थ्य व्यवस्था को देखकर मुझे वह समय बरबस याद आ गया जब सातवीं कक्षा में था और अपनी माँ का इलाज़ कराया था। उस समय के प्राय: सभी डॉक्टर आर्टिकल 19 के संपादक नवीन कुमार के मित्र डॉ. सोनू की तरह ही दयालु होते थे।

उन डाक्टरों और सीनियर रेज़ीडेंट डॉ. सोनू से तुलना करने पर आज के बहुतेरे डॉक्टर मुझे राक्षस लगते हैं। सीनियर रेज़ीडेंट डॉ सोनू ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अपने वरिष्ठ साथी रहे नवीन कुमार को अपने कमरे पर रखकर इलाज़ किया। इतना बड़ा जोखिम कौन उठाता है जो उठाता है वह डॉ. सोनू होता है और जो मज़दूरों और मजलूमों को उनके घर पहुंचाता है वह सोनू सूद होता है। ये अपने देश की ऐसी बड़ी मिसालें हैं जो दवाओं के तस्करों, काला बाज़ारियों पैसा पहले रखवाकर इलाज़ शुरू करने वाले चिकित्सकों के पापों पर भी डाल देती हैं।

एक बार मेरी माँ गंभीर रूप से बीमार पड़ी तो मैं उन्हें लखनऊ लाने पर अड़ गया तो पिता जी का कहना था कि, "मेरी मूँछें खुजला रही हैं। अब ये बचेंगी नहीं। 'इसपर ताऊ जी ने भी आग में घी डाला और मुझसे तमतमाकर बे, "ज़्यादा तमाशा न बनाव। लहास केरि खराबी करै क होय तौ लखनऊ लइ जाव।"

मुझे याद है कि चारपाई पर लिटा कर चार कोस दूर बेलहरा तक जो लोग मेरी माँ को लाए थे उनमें एक भी सवर्ण न था। यहाँ तक कि पिछड़ी जाति का भी नहीं। मेरी माँ से मुफ्त में लीटरों दूध ले ले कर साँड़ हुए मेरे पट्टीदार भी काम न आए। हम अपने सगे और चचेरे भाई-बहिनों में मैं सबसे बड़ा था और उस समय मेरी उमर 13-14 साल रही होगी। इस तरह मैं भी इस काम का न था। चारपाई पर लाई गई मेरी माँ की ब्लीडिंग से पीछे जो रहता घंटे दो घंटे में लाल हो जाता था। माँ को 'क्वीन मेरी' में भर्ती कराया। मेरे किशोर और अबोध होने का लाभ यह मिला कि बेलहरा से लखनऊ तक के पैसे कण्डकटर ने भरे। उसी ने कैशरबाग से चौक जाने वाले टैंपो के पैसे भी दिए थे। टैंपो वाले ने इमर्जेंसी वार्ड में भर्ती भी करा दिया था।

दूसरे दिन ही मेरी माँ को होश आ गया था। तीसरे दिन से बोलने और खाने-पीने लगी थी। बाहर से न एक पैसे की दवा लेनी थी न फल। सब कुछ अस्पताल से ही मिल जाता था। यहाँ तक कि एक स्टाफ नर्स की कृपा से माँ के साथ ही मुझे भी खाना मिल जाता था।

परायों की हमदर्दी देख कर यह सोचे बिना कि भादों की बरसात में मेरे पाँच छोटे भाई बहिनों को छोड़कर कैसे आएँगे, पिता जी पर बहुत क्रोध आता था। उसी गुस्से में शायद एक पोस्टकार्ड पिता जी को लिखा था कि,' अगर मूँछों की खुजली शांत हो गई हो तो क्वीन मेरी के फलाँ वार्ड और बेड नंबर पर आकर मिल लो। 'खैर! पिता जी आए। खाने के शौकीन पिता जी घी सहित तमाम ताम-झाम भी साथ लाए। पिता जी खाना बनाने में माहिर थे। अच्छा-अच्छा खाना खिला कर उन्होंने दो तीन दिन में ही मुझे खुश कर लिया था।

शायद डेढ़ महीने में मेरी माँ जवान और ताकतवर के साथ-साथ सुंदर भी हो गई थी। ऐसे थे मेरे किशोरावस्था के अस्पताल!

लेकिन आज की सरकारी स्वास्थ्य व्यवस्था ऐसी है जिसने हमारे जीवन को राम भरोसे छोड़ दिया है। प्राइवेट अस्पताल तो इनके भी ताऊ हैं। जब मरीज़ का तन, मन औरधन क्षीण पड़ जाता है तो सरकारी अस्पताल को रेफर कर देते हैं। देश के कर्णधार यानी नीरो के लिए रोम जले तो जले नीरो को तो बाँसुरी बजाने में आनंद आ रहा है और उस बाँसुरी की धुन पर जैसे लाखों-करोड़ों चूहों का झुंड स्वेच्छा से डूबने जा रहा है। कुछ तो उसी भीड़ के धक्के से उसी दिशा में जा रहे हैं जिस दिशा में जाने के बाद कभी कोई लौट कर नहीं आया। जो रों को लौटने की कोशिश करते हैं कुचले जाते हैं। इसलिए बाँसुरी सुनते हुए मरण बेहतर मान रहे हैं।

मैं अपनी देह पर कोरोना का तूफान झेलकर दोनों तटबंध तुड़ा बैठा हूँ फिर भी पैसों और दवा के बल पर अभी ठीक हूँ। रिकवरी भी फास्ट हो रही है। पर यह भी सोचता हूँ कि सबके बच्चे मेरे बच्चों जैसे नहीं होते। जो होते भी हैं उनके पास संसाधन नहीं होते। उनके पास पैसे भी नहीं होते। क्या उनके लिए सरकारों की कोई ज़िम्मेदारी नहीं होती। जैसे मुझे हॉस्पिटल मिल गया। ऑक्सिजन आ गई क्या आम आदमी को ये सुविधाएं सरकारें मुहैया करा रही हैं? नहीं करा रही हैं तो आखिर यह ज़िम्मेदारी किसकी है? क्या नागरिक ऑक्सिजन प्लांट लगाएँगे? क्या अस्पताल भी नागरिक ही खोलेंगे? यदि ऐसा है तो क्या सरकारें तेल की कटोरी और बोरी लेकर पार्कों में बैठेंगी। यकीन मानिए यह भी काम ये ठीक से न कर पाएँगी। किसी कार्पोरेट को ठेका दे देंगी।

मुझे सब कुछ समय पर मिल गया। दवा भी, दुआ भी और प्यार भी। अस्पताल, डॉक्टर, फार्मेसिस्ट सबने नकद माँगा और उनको मिला। उसमें एक मिनट भी जाया न हुआ। अपने महान सेवक और मसीहा के डिजिटल इंडिया की छाती पर सवार भगवान माने जाने वाले अधिकांश डॉक्टर अपनी प्राण प्रिया लक्ष्मी जी की जुल्फों में उंगलियाँ फेर रहे थे। यह मेरा निजी अनुभव है और प्राइवेट चिकित्सकों के बारे में है। इसका सामान्यीकरण करना ठीक नहीं है। दवाओं की मारामारी और चोर बाज़ारी रोकने के लिए जब सरकार ने रैम डेसिमीर और अन्य ज़रूरी दवाओं का वितरण अपने हाथ में ले लिया तो प्राइवेट अस्पतालों में इलाज़ कराने वालों को बड़ी परेशानी हुई। इसके बावज़ूद खास बात यह कि एक दिन भी मेरी किसी दवा का नागा नहीं हुआ। जांचों में घंटे क्या मिनटों की भी देरी न हुई।

'यह सब मेरे जीवित बच जाने का रहस्य है!'

जैसे- जैसे स्वस्थ हो रहा हूँ पत्रकारों, साहित्यकारों सबको ध्यान से देखने की आदत होती जा रही है कि कैसे-कैसे सूंघ रहे हैं साहित्यकार /पुरस्कारों का आसान पथ

डिवाइन फैथ फेलोशिप सोसाइटी द्वारा प्रकाशित हिन्दी साहित्य की पत्रिका

पादुकाओं को पोंछ रहे हैं/ सभी पत्रकार/ लाशों के कवकों पर/ छतरी ताने खड़ा / चुनावों का परिणाम भी बांच रहे है

जहाँ चुनाव संपन्न हो गए हैं/ पसलियों के पहिए/ बता रहे हैं कि/ कितना भागे हैं देह के रथ/ रेमडेसिविर के लिए रात के बारह बजे/ ब्रह्म राक्षसों से समझौते करते हुए।

सोचता हूँ कि उनका क्या जो अस्पताल में ऑक्सिजन की प्रतीक्षा में हैं? क्या उनका भी कुछ होगा जो अस्पतालों की गैलरी, एंबुलेंस, कारों, आटो या बेटे की गोद में दम तोड़ रहे हैं!

भगवान उन सबको सद्बुद्धि दे; जिनकी असमय मति मारी जाने से लाखों मारे जा रहे हैं और हज़ारों उसकी दहशत में मर रहे हैं।

डॉ गंगा प्रसाद शर्मा 'गुणशेखर'

समशेर नगर, डाक बहादुर गंज, जनपद -सीतापुर के निवासी हैं। उन्होंने अपनी उच्च शिक्षा लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ से प्राप्त की है इसके अतिरिक्त उन्होंने शैक्षणिक अनुभव और शैक्षणिक उपयोगिता की पुस्तकों का लेखन किया है। उनके द्वारा 30 वर्षों से अधिक का अध्यापन अनुभव अधिकतर हिंदीतर भाषी और विदेशी विद्यार्थियों को हिंदी भाषा और साहित्य का शिक्षण ऐन इंट्रोडक्टरी हिंदी रीडर (हिंदीतर भाषियों और विदेशियों को हिंदी सिखाने की रूप साम्य पद्धति पर तैयार की गई अब तक की इकलौती सरलतम पुस्तक) संक्षिप्त व्यवहारिक शब्दावली (शब्दकोश) स्त्रीलिंग शब्द माला हिंदी (शब्दकोश), हिंदी क्रियाओं के बहुसंदर्भी प्रयोग,हिंदी में लिंग निर्धारण आदि विषयों पर कार्य किया है। विस्तृत विवरण के लिए ई-प्रदीप की वेबसाइट www.epradeep.com पर भ्रमण करें।

समकालीन हिंदी कविता में वसंत

बी. एल. आच्छा

महानगर में हूँ तो "कूलन में केलिन में बगर्यो बसंत है" का आभास तो दूर-दूर तक नहीं है। अलबत्ता ईस्वी कैलेंडर में छुपा विक्रमी पंचांग जरूर बता रहा है कि वसंत पंचमी आ रही है। कुछ पारंपरिक घर हैं कि पूजन करेंगे, तो बाजार से पूजाकर्म की चीजों का दिखना हो जाएगा। बहुत हुआ तो शालाओं में प्रवेश का दिन भी हो सकता है दक्षिण में। कुछ साहित्य प्रेमी निराला को वसंत का अग्रदूत मान कर श्रद्धांजलि दे दें। मगर वो जो बयार है, फूलों-कलियों पर भौंरों की गुंजार है, सरसों के पीले खेत हैं, नई धानी चूनर है, नासिका में सुगंध की उठान है, प्रकृति की मधुमती सज्जा है, वह तो आभासी दुनिया में ड्राइंग रूम के संचार साधनों में ही इतराते हैं। और शहराती दुनिया में जैसे होली का रंगीन छींटा दिन भर में कपड़ों पर छकता नहीं है, वैसे ही जीवन भी ऋतुराज के सारे एंद्रिय स्पंदन से अछूता सा है।

पर यादें गमक जाती हैं। कालिदास ने ऋतुसंहार में घोषित किया था- "सर्वप्रिये चारुतरं वसंते"। रासो-साहित्य के से लेकर रीति साहित्य तक, बारहमासा से लेकर मुक्तक छंद तक, आलंबन से लेकर उद्दीपन तक रसराज वसंत जीवन का नया संवत्सर बन जाता है। वसंत तो जीवन की आकांक्षाओं का प्राणभूत है। गंध का समारोही उल्लास है। पंखों की थिरकती आकाशचर्या है। बीज का पुष्पोत्सव है। पूरी प्रकृति, मानव और जीव-जंतुओं के लिए खिलने का मौसम है। यह वसंत केवल बौराई अमराई का उल्लास नहीं है। पलाश की आभा भर नहीं है। मनुष्य की जीवनीशक्ति की निर्बंध आकांक्षा का सूत्रपात है। वरना क्या निराला यह कह पाते- "अभी न होगा मेरा अंत/ अभी अभी तो आया है मेरे जीवन में नव वसंत। "कामायनी की श्रद्धा की माधुरी वाणी सुनकर चिंताक्रांत मनु क्या कह पाते- "कौन हो तुम वसंत के दूत!" और अज्ञेय भी प्रकृति को इस रूप में सजा पाते- "पीपल की सूखी खाल स्निग्ध हो चली/ सिरिस ने रेशम से वेणी बांध ली/ नीम की बौर में मिठास देख/ हँस उठी कचनार कली/ टेसुओं की आरती सजा/ बन गई वधू वनस्थली।"

मगर आज इस वनस्थली वाले बसंत का पता महज कैलेंडर से चल रहा है। समय बदलता है, जीवन शैली बदलती है। सभ्यताएं अलग से करवट लेती हैं। प्रकृति का प्रभासी सौंदर्य तकनीक में आभासी बनता चला जाता है। फूलों के रंग कागज में उतर आते हैं। जंगल की पुष्पगंध और फलों के रस बोतलबंद रसायनों में एसेंस बनते चले जाते हैं। जिंदगी ड्राइंग रूम में सूर्य किरणों को ढकते परदों के भीतर ऑडियो- वीडियो की आभासी दृश्य तरंगों में वैभव मनाती है। तो लगता है जंगल से आ रहा वसंत टोल नाके पर ही सहमा सा बैठा है।

कितना बदलाव है दृश्यों में। अनुभूतियों में। जीवन के स्पंदन में। हाल ही में तो मंगलेश डबराल ने रचा था- "हमारी स्मृति में /ठंड से मरी हुई इच्छाओं को फिर से जीवित करता/ धीमे -धीमे धुंधवाता/ खाली कोटरों में/ घाटी की घास फैलती रहेगी रात को/ ढलानों के मुसाफिर की तरह/ गुजरता रहेगा अंधकार। "धूमिल जैसा बेलाग कवि जब वसंत से बात करता है, तो उस लम्हे में कितना उत्तेजन भर देता है- "नीचे उतर/ आदमी के चेहरे को/ हंसी के जौहर से/ भर दे/ परती पड़े चेहरों पर/ कब्जा कर/ हलकू को कर जबर।" पर इसके ठीक उलट समय के बदरंग को पहचानता मनोज श्रीवास्तव का एहसास सच्चाई से परे नहीं है-" दरवाजे पर आ बैठा वसंत/ झूठी शान से ग्रस्त/ शब्दकोशों से परित्यक्त/ अप्रिय तत्सम शब्द की भांति/ वसंत/ जिसके प्रदूषण साये में ढल रहा है/ एक पोलियो पीड़ित देश/ जिसका बहुरंगी परिवेश। "और इसकी परिणति के साथ वे समूची सांस्कृतिक यात्रा इस कठघरे में सवालों से गिर जाती है-"नव संस्कृति के बेशुमार बदतमीज शब्द /जो आए दिन सार्थक होते रहते हैं/ तमतमाते रोजनामचे में/ .... महानगरीय चौराहों पर /अजूबे जीवनादर्शों में।"

यों वसंत में वन कितना छिटका होगा, यह ठाकुरप्रसाद सिंह 'दिन बसंत के' में जरूर कहेंगे- "फूल चंद्रमा का झुक आया है धरती पर/ अभी अभी देखा मैंने वन को हर्ष भर। "मुझ में भी फिल्मी संगीत की ध्वनित हो जाता है- "आधा है चंद्रमा रात आधी, रह न जाए तेरी मेरी बात आधी।" मगर यह तो अरमानों का मधुरिम संगीत है। चांदनी और चंद्रमा मेरी खिड़की से कहाँ झांक पा रहे हैं। एयर कंडीशन लगे बेडरूम में खिड़की पर पर्दे जो लटके हैं। मन के आकाश में छिटका चंद्रमा गीत गाने को मजबूर कर रहा है।

पर परदों की नयी सभ्यता चांद-चांदनी को बाहर ही रोके है। मल्टी सभ्यताओं में तो वह दुर्लभ दर्शन है। बकौल चंद्रकांत देवताले- "वसंत कहीं नहीं उतना असर कर रहा /जितना चिड़ियों की चहक-फुदक में/ अखबार के मुखपृष्ठ पर तो कुछ भी नहीं। "और ऋषभदेव शर्मा तो दो टूक कह जाते हैं स्वयं को जीव- भक्षी पौधा मानकर- "वसंत मुझ पर मत आना/ मेरे रंग झूठ हैं- इंद्रजाल हैं/ खींचते हैं अपनी और मासूम तितलियों को/ चहचहाते परिंदों को/ उन्हें क्या पता -मेरे रंग मौत के रंग है ।"

अब कितने बदल गए एहसास, वसंत के रंग-राग। नई सभ्यता की नई हवाओं, बाहर-भीतर की नई परतों ने केवल इतना ही नहीं कहलवाया है- "यह उपमान मैले हो गए हैं, देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच।" बल्कि सभ्यता की मल्टियों में, मॉल के रंगीन बाजारों में, श्रव्य -दृश्य के नये आविष्कारों में, अभिनय के परदों पर ये उपमान गायब से ही नहीं हो रहे, उपभोक्ता संस्कृति का बाजार बन वसंत की समानांतर संस्कृति का राग -रंग बन गये हैं। अमित जैन 'मौलिक 'जब लिखते हैं- "नये फूल गुंचे तितली कुछ/ ख्वाहिश हो मचली मचली कुछ/ इन सबका मकरंद बनाकर/ शीशी में गुलकंद बनाकर। "महानगरीय संस्कृति के यह चमचमाते रंग, शीशियों में भरे स्वाद, कतरब्योंत वाले फैशन वस्त्रों में चलते-फिरते शोरूम की तरह वसंत वनस्थली से कहीं दूर अटका है।

पर सारे नये उपमानों के बाद भी हिंदी कविता में वसंत के उर्वर अंतस्तल को धकेला नहीं जा सका है- "दो रागिये- बैरागिये/ हेमंत और शिशिर/ अधोगति के तन में जाकर पता लगाते हैं उनजड़ों का/ जिनके प्रियतम-सा उर्ध्वारोही दिखता है अगला/ वसंत।" लीलाधर जगूड़ी की कविता में वसंत अंदर में जमा है। निराला इस अंत:प्रसार पूरी प्रकृति और हिंदी कविता में देख रहे थे- "रूखी री यह डाल वसन वासंती लेगी । "वसंत में जीवन की आकांक्षा उपभोक्ता संस्कृति में, तकनीक के ब्रह्मांड में, परदों की सभ्यता में कितनी ही दबी-छुपी हो; याकि निपट गरीबी के रंगहीन जीवन में, मगर ओम पुरोहित कह ही जाते हैं- "आ ऋतुराज! बाप की खाली अंटी पर/ आंसू ढलकाती/ सूरज की अधबूढ़ी बिमली के/ हाथ पीले कर दे/ पहिना दे भले ही/ धानी सा सुहाग जोड़ा।"

हिंदी कविता में छायावादी कवि-मन गा उठता था- "प्रथम किरण का आना रंगिणि तूने कैसे पहचाना" या कि प्रसाद के गीत की तरह- "तुम कनक किरण के अंतराल में लुकछिप कर चलते हो क्यों! "पर बदलते समय में प्रतिमान और उपमान बदल गए। प्रकृति- संस्कृति उपभोक्ता-संस्कृति में बदल गई है। जीवन के उद्दाम रंग अब सिनेमाई अभिनय रंगों में उतर आये हैं। पर सारे तीखे, मट-मैले, प्रदूषण से धूमिल, एहसासों में कृत्रिम मनोभावों में भी वसंत चाहे रफूघर बनकर आए या लीलाधर जगूड़ी की कविता में आदिम चर्मकार बनकर। मगर वसंत हिंदी कविता का अंतरंग पैरोकार है। जो न जीवन से छिटकता है, न कविता से नदारद हो पाता है- "पंक्ति दर पंक्ति पेड़ों के आत्म-विवरण की नई लिखावट/ फिर से क्षर-अक्षर उभार लाई रक्त में/ फटी, पुरती एड़ियों सहित हाथ चमकने लगे हैं/ पपड़ीली मुस्कान स्निग्ध हुई/ आत्मा के जूते की तरह शरीर की मरम्मत कर दी/ वसंत ने/ हर एक की चेतना में बैठे आदिम चर्मकार/ तुझको नमस्कार।" आदिम चर्मकार की यह वासंती जीवट चाहे रीतिकाल के किलकंत बसंत की तरह न उभरे, मगर आकांक्षा का चमकदार संसार अंत: संसार इसमें सचेतन है। भले ही जल गया हो कामदेव, पर सखा वसंत इसी अनंग की आनंद की काम चेतना को सूखने नहीं देता।

श्री. बी. एल. आच्छा

सम्पर्क: फ्लैट-701,टावर-27, नॉर्थ टाऊन, स्टीफेंशन रोड, पेरंबूर, चेन्नई (तमिलनाडु), पिन-600012

मोबाइल- 9425083335

ईमेल- balulalachha@yahoo.com

डिवाइन फैथ फेलोशिप सोसाइटी द्वारा प्रकाशित हिन्दी साहित्य की पत्रिका

देश का सम्मान घायल हो न जाये

डॉ. उमेश चंद्र शुक्ल

मधुकर गौड़ समकालीन गीत परंपरा के उन्नतिशील सक्रिय समर्थ गीतकार, सृजनशील, संभावनाओं से लबरेज मधुर प्रकृति के ओजस्वी, अति संवेदनशील गीतकार है। स्मृतियों के आईने में उतारते हुए जीवन के जिवंत क्षणों से संवाद स्थापित करते हुए मधुकर जी बेबाक शब्दों में मन की बात कह जाते है-

एक आदत सी है मुझमें बांकपन की
टूट जाता हूँ, मगर झुकता नहीं हूँ
स्नेहवश आंको अगर, बिन मोल ले लो
किन्तु सिक्को के लिए,
बिकता नहीं हूँ।।

मधुकर जी के गीत की संवेदना वृत्ताकार होकर शब्द बिम्ब और अर्थलय की परिधियों को पार कर जीवन के केन्द्रीय लय तक पहुँचती है, जिसे हम रसानुभूति या रस का साधारणीकरण कहते हैं। जीवन रस शिराओं में संचरित होने लगता है पाठक या भावक, स्रोता रससिक्त होकर सुधबुध खो बैठता है। जीवन की केन्द्रीय लय तो जन्म से ही गीतकार मधुकर के श्वास-प्रश्वास में व्याप्त है। जैसे-जैसे जीवन के सौन्दर्यमूल्य विकसित हुए मन तरंगायित होने लगा काव्य की सरिता मनोजगत में छलछलाने लगी, स्मृतियों के आईने में उतरती हुई रचनाधर्मिता, अनुभवों की थाती को कलम की रोशनाई से 'गांव भर में धुंआ' में सहेजने लगता है--

"मैं कभी सागर,
नदी,नाविक रहा
पर जिन्दगी मानी नहीं
मेरा कहा ॥
बादलों से दोस्ती थी
दुश्मनी थी धूप से
मन अगर सच्चा मिला तो
क्या गिला था रूप से।।" -गीताम्बरी

आधुनिक गतिशील जीवन, तथ्यात्मकता का अभाव, संबंधों की सूखती ऊष्मा के बीच मृगतृष्णा सरीखी जिन्दगीं में स्मृतियों की थाती व वर्तमान से संवाद के बीच जीवन की तपन और तथ्यहीन स्मृति कितनी तथ्यात्मक है। कविता का सचित्र अंकन हमें बरबस विचार करने के लिए अपने पास रोक लेता है। जीवन के बीते हुए क्षण जीवन से संवाद करने लगते है। सुख-दुःख की आँख मिचौली में क्षणांश वातावरण जिवंत हो उठता है। मन-प्राण बोल उठते है, गीत की स्रोतस्वनी फूट पड़ती है-

"कहीं अंकित करें हमको
सृजन के हंस बोलेंगे
मिलेंगे बाँह फैलाकर
हृदय-मन-प्राण खोलेंगे।। "-गीताम्बरी

मधुकर गौड़ के कवि एवं गीतकार ने आज़ादी के बाद भारतीयों में आई नैराश्य की भावना को अपनी अंतर्वस्तु के रूप में आत्मसात करने और उसे अभिव्यक्त करने के लिए मध्यवर्गीय पारिवारिक बिखराव, टूटन, असंतोष और बेमानी रिश्तों की घुटन को अपना विषय बनाया है और भ्रष्ट शासनतंत्र द्वारा पैदा की गई अराजकता और शोषण के युगीन संदर्भों को भी गीतों में व्यक्त करने की सक्षम भूमिका निभाई है।मधुकर गौड़ की समूची कविता का कार्यव्यापार अवलोकन और अनुभूति पर टिका है, गीतकार के सरोकार मुखर है --

"बिजलियां चमके, उठे तूफान या बरसात आये ,
ध्येय पथ में अनेकों बार छल की रात आये;
याद यह रखना, हमेशा साथियों --
'देश का सम्मान ' घायल हो न जाये ॥"- गीताम्बरी

महानगरीय भागमभाग, अतिभौतिकता एवं सूखती संवेदनाओं के बीच गीतकार अपनी देशज भंगिमा कविता में संवेदना की आधुनिकी जितनी गतिशील और सत्वर मधुकर जी के यहाँ दिखाई देती है उतनी शायद किसी और हिंदी कवि में नहीं. उनकी कविता का केंद्रीय कथ्य कुछ भी हो, उसका सबसे अचूक, अवेध्य और संवेदनशील बिन्दु वह एक खास मोड़ होता है जिस पर आकर उनकी कविता एक

अलक्षित भावबोध से भर उठती है। सम्पूर्ण परिवेश गीतों की ऊष्मा से तरंगाइत हो उठता है। उस मोड़ पर पहुंच कर पाठक, श्रोता और भावक का कवि-मन भी उस अलक्षित अर्थगौरव के सम्मुख जैसे ठिठक उठता है। उस अनकहे, अनुभूत की खोज ही मधुकर गौड़ की कविता की वह केंद्रीय धुरी है कुछ ऐसे सद्यःस्नात बिम्ब उनकी कविता के हर कोने-अँतरे में सजे-धजे हुए मिलेंगे कि हम उनकी कौंध से बरबस मुग्ध हो उठते हैं। उनकी कविता अचरज से इस दुनिया को निहारती है, इसकी हर चहल-पहल को अपने अंत:करण में सहेजती चलती है ---

"चलो कुछ देर हम देशी हवा खायें
उड़े सब साथ,
चिड़ियों की तरह गायें।
करें हम तितलियों से गुफ्तगू
मौसम के बारे में,
कभी शबनम, कभी कलियाँ
कभी हम फूल बन जायें।
चलो कुछ देर हम देशी हवा खायें॥" -गीताम्बरी

मधुकर जी की कविताएं अतीत और वर्तमान की स्मृतियों में आवाजाही करने वाली कविताएं हैं। उनकी कविताएँ इसी विश्वास, प्रतिरोध, बेचैनी और तद्भवता की कविता है, ये कविताएं देशज और नागर सभ्यता के बीच एक पुल बनाती है। गौड़ जी की कविता किसी शासन या सत्ता पर सीधे नहीं, वह उसके अंत:करण पर चोट करत हैं। वह सत्ता और लोकतंत्र के विचलनों से व्यथित तो होती है पर उम्मीद नहीं छोड़ती कविता जहाँ अपनी अनूठी संरचना, अनूठे बिम्ब, कसे हुए छंद और अपने गठीले विन्यास के लिए जानी जाती है वहीं वह बिना किसी निर्धारित एजेंडे के लोकचित्त में भी उतनी ही आत्मीयता से प्रवेश करती हैं। वह अपने समय की तलाश को 'मिली न मुझको मानवता 'कविता में व्यक्त करते है, गीतकार का सर्जक प्रेय है --

"सब कुछ मिला शहर-शहर में,
मिली न मुझको मानवता।

अपराधों शिविर लगे थे,
जन मन में थी कायरता ॥
सहमें-सहमें से गुलाब थे,
डरी डरी सारी कलियाँ ,
खून की सर पर चादर ओढ़े
चुप्पी साधे थी गालियाँ
ऐसा शोर मचा था जिसको
समझ नहीं पाता था मैं ॥" - गीताम्बरी

गीतकार अपने समय की बारीक से बारीक आवाज को सुनता है, पीड़ा, अवसाद और निराशा की हल्की से हल्की खरोंच तथा उम्मीद की पुलक को अपनी कविता में दर्ज करता है। "जन मानस और मुनिमानस का संघर्ष आज का नहीं है। मुनि ने सदा यह दावा किया है कि उनकी रचना में शाश्वत प्रकट होता है, और उसने जहाँ तक हो सका है जन और उसकी कृति की अवहेलना की है, उसे हेय बताया है। ..... शताब्दियों पूर्व वेदों की रचना हुई। उन्हें जिस वर्ग ने निर्माण किया, उसी वर्ग के अन्य व्यक्तियों उसे अलौकिक और अपौरुषेय बताया। ऐसा उनका अपना आतंक और प्रभाव जमाने के लिए किया जाता रहा।यह आधुनिक काल तक न रह सका। लौकिक काव्य की उद्धावना हुई और आदि कवि बाल्मीकि ने रामायण रच डाली, वह उनकी रचना मुनि-मानस का प्रतिफलन न था, नहीं तो उसे लौकिक न कहा जाता। किन्तु मुनि-मानस एक और धाँधली करता रहा है। जन-मन की सृष्टियों को वह अपनी बनाता रहा है। बाल्मीकि और उनके वर्ग की रचनाएँ मुनि-मानस की वस्तुएँ हो गईं। जन का जो सुन्दर था उसे अपना लिया गया। वह परिमार्जन और संस्कार करना जानता है। लोक मानस से सामग्री लेकर उन पर केवल कलई मुनि-मानस कर देता है। मुनि को विद्वान कहा जा सकता है, तत्वदर्शी कहा जा सकता है, किन्तु उसके पास जो कला है वह अपनी नहीं। कला के लिए उर्वर भूमि की आवश्यकता होती है। स्वतंत्रता और मुक्ति ही उर्वरता है। "लोक मानस के चितेरे लोक मानव मधुकर गौड़ के पास यही उर्वर भूमि है, यही कारण है कि जीवन की हर स्थिति को अभिव्यक्त करने के लिए उसके पास सामग्री है। लोक मानव ने शोषण को स्वयं झेला है इसलिए शोषित की पीड़ा जिस ढँग से वह व्यक्त करते है वैसा कोई और नहीं। जब किसी ऐसे

प्रसंग के लिए लिखे जा रहे नवगीत में लोकगीत या लोकभाषा की उपस्थिति होती है तो उस गीत या नवगीत की संप्रेषणीयता और बढ़ जाती है, क्योंकि उन संदर्भों का विश्लेषण श्रोता के अन्तस में बैठे हुए लोकगीत या लोकगाथा या किसी लोक संदर्भ के सहारे पल भर में साधारणीकरण हो जाता है और भावक उसका भरपूर आनन्द लेने में सक्षम हो जाता है।

मधुकर जी की समूची कविता भौतिकता के विरुद्ध खड़ी है। कवि या गीतकार महनगरीय भीड़ में भी मानवीय मर्म को छूने वाले उन स्थलों की तलाश करता है। जहाँ अभी संवेदना की नमी बाकी है उनकी समूची काव्य संरचना चाहे जितनी कलात्मक और नए तौर तरीकों वाली हो, उसके भीतर आम आदमी की संवेदना से जुड़ने की एक अनायास कोशिश दिखती है। भौतिक चकाचौध माया नागरी की उलझनों के बीच गीतकार को बार-बार छूटा हुआ गांव-कस्बा एवं सरोकार याद आते हैं--

"उनको बाँटो विश्वास नया
है थकन भरी जिन पावों में
सर पर रख कर जो धूप चले
उनको आने दो छाँवों में " -गीताम्बरी

संवेदना की आधुनिकी के बीच यह कवि भूल नहीं जाता कि वह भारत का कवि है। किसानों, ग्रामीणजन के सुख-दुःख के बीच पला-पुसा कवि है। जिसकी कविता में छोटे कस्बों, गांवों, नदियों, लोगों, संगी-साथियों के जीवन की लय हास-उल्लास समाहित है। मधुकर जी की कविता में महानगरीय भावबोध के साथ गांव में रचे-पगे उनके कवि-मन का एक गहरा किन्तु झीना-सा संघर्ष चलता रहता है और हर बार उनकी कविता इस संघर्ष में अपनी गरबीली गरीबी की कामना के साथ स्वाभिमान से सिर उठा कर चलती हुई 'हल की बेटिया 'मालूम होती है पर लोकतंत्र की बेरोकटोक हवा, पानी और धूप के बावजूद जो सांस्कृतिक क्षरण हो रहा है। जो स्मृति-लोप हो रहा है, उनकी समूची कविता इस प्रवृत्ति के सम्मुख चुनौती और ढाल बन कर सामने आती है –

हमने देखी रौशनी में गंध है
सूर्य का लावा बरफ में बंद है
इसलिए सब खेतियाँ
इसलिए बदनाम हल की बेटियाँ ॥ -गीताम्बरी,पृष्ठ -467

सामाजिक बंधन की बेड़ी में कसें, छटपटाते, घुटते, विषाक्त वातावरण के बीच जीवन जीना मुश्किल होता जा रहा है। सजग रचनाकार भाव एवं चित्रों की पच्चीकारी करते हुए काव्यशास्त्रीय मानकों को स्थापित करता चलता है मधुकर के सर्जक के पास सृजन के लिए कितना सब कुछ है। क्षण-प्रतिक्षण के जिवंत पल, अनुभवों का व्यापक संसार, मनोभावों को अभिव्यक्त करने की पुरजोर लालसा और न जाने कितना कुछ है जो जीवंत हो उठना चाहता है। कवि,गीतकार मन के भावों साथ एकसार हो जाना चाहता है। मन की बेचैनी शब्दों के आईने में ढलने लगती है कागज़ और कलम का अटूट रिश्ता संबंध लिखने लगता है और लिखने लगता है जीवन। संवेदना क्रमशः शब्दों पर ढरकने लगती है, जाने-अनजाने भावों का आवेग कविता के साँचे में अटूट रिश्ता बना जाता है। सृजन की प्रक्रिया मुखर हो उठती है।

मधुकर गौड़ के यहाँ 'कला, कला के लिए नहीं, बल्कि कला जीवन के लिए है।' इसी कारण हिंदी कविता की गीत परंपरा के महान कवि कबीर, तुलसी, सूर मीरा, रहीम, रसखान आज भी प्रासंगिक हैं और जन-जन में लोकप्रिय हैं। ये हिंदी कविता के ही नहीं,बल्कि हमारी सांस्कृतिक चेतना के भी सक्षम वाहक हैं। इसी समाजोन्मुख दृष्टिकोण को गीतकार ने रचना प्रक्रिया का आधार बनाया है। जो मानवीय संवेदना का जागरूक चितेरा ही नहीं बल्कि संघर्षशील ज़िंदगी का सच्चा हमसफ़र भी है। गीत को संरक्षण प्रदान करने के साथ आधुनिक युगबोध और शिल्प के साँचे में ढालकर उसको नवीन और मोहक रूप आकार प्रदान करने का काम किया है।

गीतकार आम आदमी के दुख-दर्द में सिर्फ़ गुनगुनाता ही नहीं, बल्कि ज़िंदगी की लड़ाई में हमदर्द की तरह ऊर्जा भी प्रदान करता है और रास्ता भी बताता है। मधुकर गौड़ की कविता सचमुच शब्दों का श्रृंगार है। उसके अर्थ नए हैं, उसकी प्रतीतियां नई हैं। उनकी कविता हमेशा पुनर्नवा और तरोताज़ा दिखती है। उनकी कविताओं में समूचे विश्व की वेदना सुनाई पड़ती है। किसी मामूली से कथ्य व किस्सागोई के शिल्प में होती हुई उनकी कविताएं उस जगह पहुँच कर विराम लेती हैं, जहाँ पहुंच कर मनुष्य की अंतश्चेतना के बारीक से बारीक तार झंकृत हो उठते हैं। उनकी कविता की बुनावट इतनी नई है जितनी हमारी आधुनिकता और उतनी पुरानी है जितनी हमारी स्मृति-परंपरा, शब्दों के बीच

साहस की तलाश करने वाले मधुकर गौड़ की कविता पीड़ा, बदहाली और विश्वसनीयता के संकट से जूझते हुए दौर में भी आखिरकार यही ऐलान करती है कि मौसम चाहे जितना खराब हो, उम्मीद नहीं छोड़ती कविताएँ --

"टूटती हैं जब उम्मीदें, तो फिर सजाता हूँ,
जिंदगी को इस तरह आसां बनाता हूँ ॥" -गीताम्बरी

* * * *

"साफ लफ्जों में सदा कहने की आदत है मुझे,
आग हूँ मैं धूप को सहने की आदत है मुझे ॥
आँधियाँ मेरे बिना कैसे चलेगी दोस्तों
मैं हवा हूँ हर घडी बहने की आदत है मुझे ॥" गीताम्बरी

यादों के झरोखें में चलकदमी, करती यादें अपने साथ बहुत कुछ लेकर आती है।जीवन की विविधरंगी तस्वीर, इन्द्रधनुषी छटा एक बारगी जगमगा उठती है। अल्हड जवानी, हँसता खेलता बचपन पहला प्यार, दोस्ती की मजबूत जमीन, सम्बन्धों की बुलंद इमारत, अभिलाषाओं का पहाड़ अर्थात सब कुछ जीवन की अमूल्य पूँजी जीवन के मरुस्थल में जिवंत हो उठती है। सारा परिदृश्य क्षणांश के लिए हरीतिमा से लहलहा उठता है। जीवन के रेत में नमी का अनुभव होने लगता है।

"वह हँसी, आँसू, रूठना,मनाना
जो जिए क्षणों को बनाते बिगाड़ते थे,
किसी अध -भूले अतीत में,
फिर से जैसे जी उठे! यादें।। " गीताम्बरी

अनंत जिज्ञासा की मरीचिका में भटकते हुए अनुभब की थाती से सम्पन्न गीतकार मधुकर गौड़ की कलम जीवन लिखती चलती है। जीवन के खुरदरे, दाँतेदार समय के साथ संवाद शब्दांकन है। 'आचरण बादल दूँ' से 'रोशनी का अपहरण' तक के लम्बे सफर का साक्षी है 'गीताम्बरी', आशा और निराशा के बीच 'समय के धनुष '1976 से 'चुप ना रहो' 2015 तक मृगतृष्णा और जीवन का आपसी मेल-जोल, धमाचौकड़ी अंततः खीच ले जाती है अनंत जिज्ञासा की ओर इति से अथ तक। मधुकर जी को पढ़ते

हुए यह विस्मृत कर पाना असंभव है कि हम एक भारतीय कविता की वीथियों से गुजर रहे हैं। इसकी गढ़न या साँचे में जो अनूठापन और नवता है, वह भारतीय कविता के स्थानिक चरित्र की देन है। भारतीय मनुष्य के स्वभाव में किस्सागोई, गपशप और बातचीत का जो अंदाजेबयाँ है, वह बचपन की यादें, गाँव और भारतीय जनजीवन से ही आया है। मधुकर गौड़ की कविताओं में प्रवेश करते समय स्पष्ट पता लगने लगता है कि हम अचानक कविता की एक भिन्न जलवायु में आ गए हैं। जिसका लोकेल देशज है और जिसके चरित्र जाने-पहचाने हैं। कविता में राजनीतिक बोध के प्रश्न पर भी वे यही मानते हैं कि शुद्ध कविता का भी एक राजनीतिक आयाम हो सकता है जैसे राजनीतिक कविता में भी सांस्कृतिक चेतना की ध्वनि सुनी जा सकती हैं। किसी भी तरह की धार्मिक सामाजिक संकीर्णता से मुक्त रहते हुए गीतकार डेमोक्रेट की भूमिका में सुकून महसूस करता है। करो या मरो तथा अंग्रेजों भारत छोड़ो जैसे स्वतंत्र भारत की संकल्पना के दौर में जन्में मधुकर जी की रगों में मुक्ति की धारा प्रवाहित है। गुलामी से आजादी की ओर स्वतंत्र भारत। मधुकर जी ने राष्ट्र की पराधीनता के दिन देखे,विदेशी सत्ता के खिलाफ जन आक्रोश देखे, शासनतंत्र का दमन देखा तथा आजादी के बाद टूटते स्वप्न, चीन एवं पाकिस्तान के साथ दो युद्धों के साक्षी रहे आंतरिक कारणों से आपातकाल की घोषणा अराजकता अब अच्छे दिनों के नाम पर दुःखी भारत देख रहे है। बाजारमुक्त भारत और बाजार-आच्छादित भारत जिसका बहुप्रचारित उदारतावाद चेहरा, व्यवस्था और संस्कृति पर खतरा जैसे सामान्यजन को मुँह चिढ़ाता हुआ-सा दिखता है।

"गजब हो गया
शहर की बातें
गाँव चली आई
दूर खड़ी परछाई ओढ़े
अपनी ही परछाई।।" गाँव चली आई -गीताम्बरी

निष्कर्ष - मधुकर जी की कविता महानगर, कस्बे,गाँव,अतीत,वर्तमान,बाजार और वैश्विकता को अपनी इसी ठेठ देशज और भारतीय मति से देखती और एक कवि की

प्रतिश्रुति और भाषायी कौशल के साथ उसे कविता एवं गीतों में उपार्जित और व्यवहृत करती आई है। मधुकर की काव्य स्रोतस्विनी गीत परम्परा की रससिक्त धरा को जयशंकर प्रसाद, पंत महादेवी वीरेन्द्र मिश्र, गोपालदास नीरज, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', बच्चन, नेपाली शंभुनाथ सिंह और ठाकुर प्रसाद सिंह से सिंचित जमीन से जोड़ती है।

संदर्भ ग्रंथ

1. गीताम्बरी -मधुकर गौड़
2. लोक साहित्य विज्ञान- डॉ सत्येंद्र पृष्ठ -367
3. गीत गंगा का नया भागीरथ -संपादक : डॉ. रामजी तिवारी
4. गीत नवांतर -संपादक- मधुकर गौड़
5. आखर-आखर मोल -संपादक - हृदयेश मयंक

नाम : **डॉ. उमेश चंद्र शुक्ल**
पदनाम : एसोसिएट प्रोफेसर
संस्थान : एम. डी. कालेज ,परेल मुंबई
मोबाइल : 9324554008
ईमेल : shuklaumeshchandra@gmail.com

डिवाइन फैथ फेलोशिप सोसाइटी द्वारा प्रकाशित हिन्दी साहित्य की पत्रिका

संत जनों का सत्संग समाज को नई दिशा प्रदान करता है। वे समाज को सुधारने के लिए सच्चा उपदेश देते हैं। व्यक्ति को सुबुद्धि और समत्व प्रदान करते हैं, प्रेम, विश्वास, ज्ञान और सद्विचार की प्रेरणा देते हैं। सत्संगति से ज्ञान की प्राप्ति होती है-

'साधो की संगत करें, बड़े भाग बड़ देव।
आपन तो संसा नहीं और उतारे खेब।।
(संत बानी संग्रह, भाग-1, पृ0 129)

संत गरीबदास ने समाज के कल्याण के लिए आचरण की शुद्धता पर बल दिया है। मन का खोट त्यागना ही वास्तविक आराधना है, माला फेरना तो व्यर्थ है-

'गरीब मत सेती खोती घड़ै, तन से सुमिरन कीन।
माला फेरे क्या हुआ, दुर कुरन वेदीन।।
(रत्न सागर, पृ0 54)

जो व्यक्ति वेश में साधु है, किन्तु आन्तरिक शुद्धि से रहित है, वह समाज में कपटाचरण का प्रतीक है। ऐसे व्यक्ति समाज के विनाश का कारण होते हैं-

'कथनी में तो कथ नहीं करनी कड़बी दिब्ब।
विष की फाकी फाकि है, जिनकूं भेटैं रब्ब।।
(ग्रन्थ साहेब, साखी 65, पृ0 97)

संत गरीबदास ने कबीरदास की भाँति अपने समय में प्रचलित सामाजिक अन्तर्विरोधों और समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया। वे एक महान चिन्तक, विचारक और समाज सुधारक थे। उन्होंने सामाजिक कल्याण को सर्वोपरि माना। अध्यात्म के साथ-साथ सामाजिक चेतना को जाग्रत करने का प्रयास भी अपने काव्य में किया। साधना की अनेक कड़ियों को एक सूत्र में पिरोकर समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया।

www.epradeep.com ई - प्रदीप अंक : 02 वर्ष : 01 अप्रैल-जून 2021
साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक ऑनलाइन त्रैमासिक - पत्रिका

नाटक और रंगमंच -- स्वरूप

डॉ. वसुधा सहस्रबुध्दे

प्राचीन कल से भारतीय साहित्य और जीवन के साथ नाटक का गहरा संबंध है। भारतीय आचार्योंने नाटक को दृश्य काव्य कहा है। जो इस अदभूत कला के वास्तविक स्वरूप को भली भाँति अभिव्यक्त करता है। काव्य का वह रूप जो दृशयात्मक हो। काव्य मनुष्य की संवेदनशील अनुभूति की अभिव्यंजना है। इस अभिव्यंजना का जो रूप रंगमंच पर दृश्य रूप में साकार होता है वह दृश्य –श्राव्य – काव्य अथवा नाटक है।

नाटक शब्द 'नट' धातु से निर्माण हुआ। 'नट' शब्द का प्रयोग अभिनेता के लिए भी होता है। 'नट' धातु से बने नाट्यम शब्द के अर्थ – नाचना , अनुकरण करना, स्वांग भरना, हाव-भाव प्रदर्शन और अभिनय करना आदि होते हैं। उसी से निर्मित नाटक शब्द का अर्थ है , ऐसी काव्य रचना जिसका अभिनय द्वारा प्रकटन होता है।

भारतीय नाट्यशास्त्र में नाटक को 'रूपक' की संज्ञा से जाना जाता है। आचार्य धनंजय का कहना है, 'जीवन की विभिन्न अवस्थाओं की अनुकृति उपस्थित करनेवाला यह दृश्य काव्य रूपक भि कहलाता है, क्यों कि इस में आरोप है। आचार्य विश्वनाथ ने अपने 'साहित्य दर्पण' में नाटक के लिए 'रूपक' संज्ञा का प्रयोग किया है। उन्होंने लिखा है 'इस रूपक का अभिनय होता है, जिस में इस जगत की विभिन्न अवस्थाओं का अनुकरण किया जाता है। यह अभिनय आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक होता है। धनंजय ने नाटक को अनुकृति कहा है। परंतु भरत मुनी द्वारा भी अनेक स्थलों पर छोटी छोटी परिभाषाएँ दी हैं। जिसमें वे नाटक को 'लोकवृत्तानुकरणम, लोककृत्तानुकरणम और पूर्व वृत्तानुचरित' कहते हैं।

इन सभी परिभाषाओं में अनुकरण महत्वपूर्ण है। इसे नाटक की मूल चेतना कह सकते हैं। वैसे नाटक पूर्णत: अनुकरणात्मक नहीं वह सर्जनात्मक रचना है। भारतीय आचार्यों ने नाटका का मूलतत्व 'रस' माना है। नाटक एक तरह से मनुष्य जीवन का चित्रण है।

डिवाइन फैथ फेलोशिप सोसाइटी द्वारा प्रकाशित हिन्दी साहित्य की पत्रिका

जो कहानी के साथ प्रस्तुत किया जाता है। कहानी में घटनाओं का संयोजन होता है। वस्तुत: सामान्य जीवन की घटनाएँ बिखरी हुई होती हैं। परंतु साहित्यिक रचना में यह रूप अन्वितिपूर्ण होता है। जीवन के इस रूप को वे रस से परिपूर्ण मानते हैं।

भारतीय नाटकों में मनुष्य जीवन आत्मविश्वास से परिपूर्ण ,निराशा से दूर तथा आस्था से जुड़ा हुआ होता है। वह अनुकृति मूलक नहीं रचनात्मक ही है। जब नाटक रंगमंच पर आलंबन, उद्दीपन, स्थायी भाव, संचारी भाव तथा अनुभाव के साथ प्रस्तुत किया जाता है तब भावविभोर होकर दर्शक उसका रसास्वादन करते हैं और उनके मन में आनंद भाव निर्माण होता है।

नाटक के विषय में नाट्यशास्त्र भरत मुनीने कहा है –

'न तज्ज्ञानं, न तच्छिल्पं, न सा विद्या, न सा कला, न सा योगी न
ततकर्मन्यन्नाट्येस्मिन न दृश्यते।। [नाट्यशास्त्र]

अर्थात संसार में न कोई ऐसा ज्ञान है , न कोई ऐसा शिल्प है, न कोई ऐसी विद्या है, न कोई ऐसी कला है, न कोई ऐसा योग है और न कोई ऐसा कर्म है जो नाट्यकला के अंतर्गत प्रदर्शित नहीं किया जाता। फिर एक विशाल जनसमुदाय के सामने उत्सव के रूप में वह अवतरित होता है। यह दृश्य और श्याव्य माध्यमों ,दिक और काल के आयामों तथा विभिन्न कलाओं के सहयोग से व्यक्त होता है।

रंगमंच शब्द का प्रयोग प्राय: दो अर्थो में किया जाता है। अंग्रेजी में इसके लिए दो शब्द प्रयुक्त है , थिएटर और स्टेज। थिएटर शब्द में एक व्यापक क्षेत्र समाहित हो जाता है, जिसमें स्थूल और सूक्ष्म दोनों की अभिव्यक्ति होती है। जब की स्टेज से रंगमंच के दृश्य-स्थूल रूप का बोध होता है। स्टेज के अर्थ में मंचसज्जा, प्रकाश व्यवस्था, अभिनेता आदि सब आता है , परंतु भाव पक्ष नहीं आता और रंगमंच में नाटक की लिखित संहिता, रंगकर्म, भाव और शिल्प भी शामिल है।

'रंगमंच अपनी अनुभूति पर आधारित है। नाटक की रचना प्रक्रिया कविता के निकट है, इसलिए सूक्ष्म संवेदनशील और गहन अनुभूति की आवश्यकता है। रंगमंच मानव की सर्जन प्रवृत्ति का क्रीडा –रूप माना गया है।

नाट्य कृति कल्पना मात्र से अनुभूति जगाती है और रंगमंच पर वह देश और काल की सीमा में एक जीवंत अनुभव के रूप में सामने आती है। रंगमंच की पूर्णता इसी में है किवह आंतरिक तत्व को बाह्य रूप प्रदान करती है। वह अदृश्य और अश्र्याव्य को दृश्य और श्र्यव्य रूप देता है और उसी बिन्दु पर रंगमंच एक सृष्टि बन जाता है।' [रंग और कला गोविंद चातक]

संस्कृत नाटक की परंपरा के साथ जुड़कर वर्तमान नाटकों ने पाश्चात्य प्रभाव का भी स्वीकार किया। आरंभ के नांदीपाठ को कुछ नए स्वरूप में प्रस्तुत किया गया। जैसे डॉ। शंकरशेष के पोस्टर, मायावी सरोवर। मणिमधुकर का 'रस गंधर्व, 'बूलबूल सराय'। सर्वेशदयाल सक्सेना की' बकरी'। आदि नाटककारों इसका उपयोग किया।

लोकनाट्य में लचीलापन होता है। प्राय: कथा मौखिक होती है। मंदिरों के प्रांगणों में अथवा चौराहे पर इस तरह कहीं भी इसकी प्रस्तुति हो सकती है।अर्थात लोककलाकारों का मंच अपने साथ होता है। सरल भाषा में गीत और संवाद , वाद्यों का गतिपूर्ण उपयोग तथा नर्तन के साथ दर्शकों को भाव विभोर कर देशकाल की मर्यादा से परे सहजता से प्रस्तुत होता है।

नाटक के संवाद स्वर के उतार- चढ़ाव के साथ ,गायन के रूप में भी प्रस्तुत किए जाते हैं। कुछ संवादों के बीच मौन के क्षण बड़े प्रभावी होते हैं। मौन रहते हुए एक दुसरेकीओर देखकर की हुई सार्थक हँसी, या आंखों से पानी बहना, या केवल स्पर्श से जो व्यक्त होता है वह शब्दों से परे होता है।

रंगमंच पर प्रस्तुत होनेवाला चरित्र वेषभूषा के कारण चरित्रगत विशेषताओं को आसानी से व्यक्त करता है तथा देशकाल की अभिव्यक्ति में भी सहायक होता है। इसलिए संवादों के साथ काल की अभिव्यक्ति में तथा नाट्यशय को अधिक गहरा बनाने में वेषभूषा सहायक होती है।

चरित्र विशेष की मानसिक उथल पुथल व्यक्त करने के लिए नाटककार विविध उपाय करते हैं। जैसे स्वगत - कथन, रेडियो की अनाउन्समेंट ,आकाश भाषित ,नेपथ्य से घोषणा , दूरदर्शन अथवा विविध पात्रों की सहायता। तथा प्रतीक, बिम्ब, ध्वनि द्वारा अभिव्यक्ति की जाती है। सूत्रधार अथवा निवेदक यह कार्य करते हैं।

डॉ. वसुधा सहस्त्रबुध्दे
शिक्षा- पीएच.डी.
विषय--डॉ.शंकर शेष का नाट्य साहित्य
सिद्धार्थ महाविद्यालय फोर्ट में 2009 तक हिंदी विभागाध्यक्ष के रुप में कार्यरत
प्रकाशित अनुवाद. हिन्दी से मराठी में -
1) चित्रा मुद्गल 2) डॉ.प्रतिभा राय 3) मधु कांकरिया 4) सुधा अरोड़ा 5) क्षमा कौल 6) नंदकिशोर नौटियाल 7) सादत हसन मंटो जैसे प्रख्यात लेखकों की कहानियां और उपन्यास का अनुवाद, **हिंदी नाटकों का मराठी में अनुवाद.-**
1) शंकर शेष 2) ललित सहगल 3) लक्ष्मी नारायण लाल 4) भीष्म सहानी

भक्ति आन्दोलन और संत साहित्य

दिनेश कुमार गुप्ता

सारांश: हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्ति आन्दोलन अब तक का सबसे बड़ा आन्दोलन था जो सदियों तक चलता रहा। रामविलास शर्मा और बच्चनजी ने इसे भारत का प्रथम नवजागरण कहा है। यह प्रथम नवजागरण था जो कश्मीर से कन्याकुमारी और गुजरात से असम तक फैला हुआ था। सच पूछा जाये तो भक्ति आन्दोलन एक अखिल भारतीय आन्दोलन था जो थोड़े बहुत अन्तर से पूरे भारतवर्ष से लगभग एक ही साथ उठा। इसका मुख्य स्वर निर्गुण निराकार और सगुण साकार भक्ति की तन्मयता और जाति का विरोध था। भारतीय मध्यकाल धर्म प्रवण काल था और उस काल में सामाजिक पुनर्गठन और सुधार का कार्य धर्म की ही भाषा में सर्वश्रेष्ठ रूप में हो सकता था। इसलिए सन्त रैदास ने धर्म को सर्वश्रेष्ठ मानकर समाज में व्याप्त रूढिगत विषमताओं और कर्मकांडों का विरोध करने के लिए धर्म का सहारा लिया, क्योंकि उस समय की स्थिति में मात्र धर्म और भक्ति के माध्यम से ही समाज को समझाया जा सकता था। सन्त रैदास जी ईश्वर भक्ति में इस तरह से डूब चुके कि उन्होंने अपने आपको ईश्वर के प्रेम में बांध लिया है। भक्ति भावना के साथ ही मध्ययुग में समाज में भक्ति के नाम पर अपनी सर्वश्रेष्ठ साबित करने की भी कोशिश होने लगी थी। धर्म के नाम पर लोगों में कई तरह के विद्रोह पनप रहे थे। एक धर्म द्वारा दूसरे धर्म को दबाकर स्वयं श्रेष्ठ बनने का प्रयास चल रहा था।

बीज शब्द: भक्ति, आन्दोलन, संत, साहित्य

हिंदी साहित्य के इतिहास में मध्यकाल "स्वर्णकाल" माना जाता है। 600 ई. से 1900 ई. तक के समय को मध्यकाल कहा जाता है। इस युग में बड़े-बड़े भक्त पैदा हुए जिन्होंने वैष्णव भक्तिमार्ग का प्रचार-प्रसार कर भगवान के विभिन्न अवतारों की लीलाओं का वर्णन किया और भक्ति के अनेक सम्प्रदाय स्थापित किए। इस युग में हमें जिस क्षेत्र में अरुणिमा के दर्शन होते हैं, वह है भक्ति का क्षेत्र। गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास जी का नाम भक्त कवियों में बड़े आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है, ये दोनों ही भक्त

कवि उच्च कोटि के विचारक और तत्व ज्ञानी थे। भक्तिकालीन सगुणोपासक कवियों को भक्त एवं निर्गुणोपासकों को सन्त कहा जाने लगा। सगुन एवं निर्गुण ब्रह्म में किसी प्रकार का भेद नहीं है। वह एक ही सत्ता है। परन्तु दृष्टिकोण की भिन्नता के कारण इन्हें दोनों नामों से पुकारा जाता है। ब्रह्म निर्गुण हो या सगुण वह सर्वव्यापी है। सगुण और निर्गुण धाराओं का मौलिक भेद रूपोपासना से सम्बन्धित है।[1]

'जाके मुंह माथा नहीं, नाहीं रूप और अरूप,
पुहुपवास से पाटरा ऐसा रूप अनूप।'
(कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ 60)

'सुन्दर मुख की बलि-बलि जाऊं।
लावण्य निधि, गुणनिधि, शोभा निधि।'
(सूरदास)

जहाँ सगुण भक्तकवियों ने पौराणिक अवतारों को अपना केन्द्र बनाया, वहीँ निर्गुण उपासक संतों ने निराकार ब्रह्म को अपने साहित्य का मुख्य बिन्दु बनाया। सन्त साहित्य की सर्जना का मुख्य स्रोत भक्ति आन्दोलन ही है। यद्यपि श्रीमद्भगवद्गीता, नारद भक्ति सूत्र और पांचरात्र संहिता भक्ति के महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं, और उनमें भक्ति की आध्यात्मिक महिमा गायी है। बारहवीं सदी में रामानुजाचार्य के प्रभाव से भक्ति की प्रतिष्ठा बढ़ी और स्वामी रामानन्द के प्रभाव से ही यह आन्दोलन इतना शक्तिशाली बना कि सारा उत्तरी भारत इसके प्रवाह में बहे बिना नहीं रह सका।[2]

"कहै रैदास की छूटी आस तब हरि ताहि के पास आत्म थिर भई जबै,
तब सबही निधि पाई।" (रैदास)

भारतीय इतिहास में मध्यकाल की सबसे प्रमुख उपलब्धि भक्ति आन्दोलन का विकास है। भक्तिकाल तक आते- आते देश की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियां परिवर्तित हो चुकी थी। सभी विद्वानों के मतों पर दृष्टिपात किया जाये तो

एक तत्व अवश्य स्पष्ट होता है कि भक्ति का उदय तत्कालीन परिस्थितियों की अनिवार्यता थी। सम्पूर्ण समाज धर्म राजनीतिक जीवन और सांस्कृतिक परिवेश ऐसा निराश खिन्न और उदास हो गया था कि कोई रास्ता ही नहीं दिखाई दे रहा था। भक्ति का मूल स्रोत दक्षिण रहा है। कबीर कहते हैं- "भक्ति द्रविड़ उपजी लाए रामानन्द।"[3]

भक्ति आन्दोलन की जो लहर दक्षिण से आयी, उसी ने उत्तर भारत की परिस्थिति के अनुरूप हिन्दू- मुसलमान दोनों के लिए सामान्य भक्ति मार्ग की भावना जगायी। मध्यकालीन भारत में भक्ति आन्दोलन दु:खी, निर्धन और वंचित जातियों को जाग्रत करने का एक आन्दोलन था, जो पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक सम्पूर्ण भारत में व्याप्त हो रहा था।

भक्ति आन्दोलन के सर्वप्रथम सन्त विचारक और कवि कबीर थे, जो आपादमस्तक दलित चेतना से ओतप्रोत थे। कबीरदासजी जाति के जुलाहा थे। भक्ति आन्दोलन में निर्गुण भक्ति का उद्भव और विकास संतों के कारण हुआ। भक्ति आन्दोलन के साथ सन्त शब्द का सम्बन्ध ऐसे कवियों से जुड़ गया जो साधक थे और आत्मशुद्धि के सहारे ईश्वर की खोज में लगे थे, धीरे-धीरे इस शब्द का महत्व बढ़ता गया। हिंदी साहित्य के भक्ति काल में निर्गुण पन्थ एक सामाजिक-सांस्कृतिक आन्दोलन है, जिसने सदियों से चली आ रही सामन्ती सोच की दिशा ही बदल दी। निर्गुण काव्य जिसे सन्त काव्य भी कहा गया है। संतों का ब्रह्म एक है, वह निराकार है और संसार के कण-कण में व्याप्त है। उस ब्रह्म का अस्तित्व तब से है जब यह संश्लिष्ट नहीं थी और नहीं यह ब्रह्माण्ड था। हवा, पानी, धरती, आकाश, अग्नि, मानव आदि कुछ भी नहीं था। संतों के निर्गुण ब्रह्म में ज्ञान, ऐश्वर्य, बल, शक्ति आदि गुण हैं। सन्तमत मध्ययुग की सबसे बड़ी उपलब्धि है, जिससे भारतीय समाज में फैली घोर निराशा, कुण्ठा, सन्ताप के बीच नवजागृति का सन्देश प्रादुर्भूत हुआ। उसने भारतीय संस्कृति और समाज को झकझोर कर रख दिया। इस जनवादी मत ने समाज को गहराई से प्रभावित किया। संतों ने परम्परागत तथा तत्कालीन समाज में प्रचलित साधना उपासना दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक विचारधाराओं में अंतर्भूत मानव के लिए कल्याणकारी शुभ तथा

उपादेय तत्वों को ग्रहण किया। सन्त निराले थे तथा उनका ब्रह्म परम निराला था। सन्तों में निरालापन उनकी सारग्राही प्रवृत्ति और और विलक्षण विचारधारा की देन थी।[4]

सन्त साहित्य की भूमिका:

हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में निर्गुण पन्थ एक सामाजिक सांस्कृतिक आन्दोलन है। हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा अपने आप में एक समृद्ध प्रासंगिक एवं अविच्छिन्न परंपरा है। किन्तु इसमें सन्त साहित्य का अपना एक विशिष्ट तथा महत्वपूर्ण स्थान है। सन्त कवियों ने निर्गुण भावना को महत्व दिया है, इनके अनुसार ईश्वर का न तो कोई रूप है, न वेश है, वह किसी अवस्था में नहीं है। अर्थात् न तो वह बालक है, न युवा है, और न ही वृद्ध। वह सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान है। सन्त साहित्य की उत्पत्ति के प्रत्यक्ष कारणों पर चिंतन करते हुए यह तथ्य हमारी दृष्टि से दूर नहीं हो सकता कि सन्त साहित्य में परम्परागत शास्त्रसम्मत धारणाओं का आग्रह नहीं है। कबीरदास ने कहा है- 'पण्डित मुल्ला जो लिख दिया, छाडि चले हम कछु न लिया'।

भारतीय समाज सुखी और समृद्धशाली देश था परन्तु धीरे-धीरे बाह्य आक्रमणकारियों द्वारा इसकी सम्पन्नता छिनने लगी। भारत पर सालों-साल विदेशी शासकों का शासन रहा। भारतीय जनता पर अत्याचार होने लगा उनका जबरन धर्म परिवर्तन करवाया जाने लगा, उनकी जमीन-जायदाद सब कुछ छीनकर बंधुआ मजदूरी करने पर उन्हें विवश किया जाने लगा। मन्दिरों को तोड़कर उनकी सारी संपत्ति को लूट लिया जाता था एवं देवी-देवताओं की मूर्तियों को खण्डित किया जाता था। भारतीय जनता यह सब कुछ अपनी आँखों से देख रही थी, वह कुछ भी कर पा रही थी, वह निसहाय थी। जनमानस ने अपनी आँखों से अपने देवी-देवताओं की मूर्तियों की दुर्दशा देख ली थी, और वह यह भी अच्छी तरह से समझ चुके थे कि उनमें जिस दैवीय शक्ति की वह कल्पना करते थे वह कभी प्रकट ही नहीं हुई। अत: समूचा जनसमुदाय परिवर्तन की माँग कर रहा था। अत: निर्गुणोपासना की प्रवृत्ति बलवती होने लगी, किन्तु कुछ विद्वानों ने इस प्रभाव को इतना बढ़ा-चढ़ाकर बताया कि वे सत्य से दूर जाते हुए प्रतीत होते हैं।[5]

भक्त कवियों ने सिर्फ अपने आराध्यों का ही बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया, उन्होंने समाज को जाग्रत करने का प्रयास नहीं किया, वे तो बस अपनी भक्ति, पूजा-पाठ और अपने इष्टदेव के गुणगान में ही सदैव डूबे रहते थे। इस प्रकार अनेक कुप्रथाएं एवं अन्धविश्वास हिन्दू धर्म में प्रचलित थे। धर्म के नाम पर लोगों पर अनाचार का समावेश था, ये सारी कुप्रथाएं खंडन की माँग कर रही थी इन्होंने वास्तविक धर्म का उदय करने की प्रेरणा दी। ये प्रेरणाएं ही सन्त साहित्य की सर्जना का कारण बनी। मध्य युग में वैष्णव साधना दो रूपों में विकसित हुई थी सगुण और निर्गुण।[6] संतों ने रूढिग्रस्त समाज को जागृत करने का बीड़ा उठाया। सन्त कवियों का एकमात्र उद्देश्य काव्य रचना करना नहीं था, अपितु इनके माध्यम से वे समाज में सुधार लाना चाहते थे। हिन्दी साहित्य में शायद ही कोई ऐसी काव्यधारा हो जिसमें लोककल्याण की ऐसी तीव्र भावना विद्यमान हो। सन्त कवियों ने निर्गुण भावना को महत्व दिया है इनके अनुसार ईश्वर का न तो कोई रूप न आकार है।

तत्कालीन समाज में वर्ग एवं उससे सम्बन्धित भेदभाव चरम सीमा पर था कोई किसी से भी भेदभाव रख सकता था। यह भेदभाव जाति, धर्म, आराध्य एवं चिंतन आदि रूपों में समाज के सभी क्षेत्रों में प्रचलित था।[7] सन्त कवियों ने इन सबका विरोध तथा खंडन किया। हिन्दू धर्म में व्यक्ति जब जीवन संघर्ष में पराजित हो जाते थे या परिस्थितियों का सामना नहीं कर पाते थे, तो वह संन्यासी बन जाते थे। कबीरदासजी संन्यासियों द्वारा सिर मुंडवाने की रीति का विरोध करते हुए कहते हैं-

'मूंड मुंडाये हरि मिले, तो सब कोई लिए मुंडाये।
बार-बार के मुंडते भेड़ न बैकुण्ठ जाये।'

सन्त कवियों ने अपने साहित्य में तत्युगीन समाज में नारी की दशा का वर्णन किया है। नारी उस समय मात्र भोग-विलास की वस्तु बनकर रह गयी थी। इनके माया-मोह में फंसा मनुष्य नारी की प्राप्ति के लिए युद्ध तक की परवाह नहीं करता था। अनेक रानियाँ तथा दासियाँ बनाकर रखना सम्मान की बात होती थी। इस समय समाज में

नारियों के प्रति कोई स्वस्थ दृष्टिकोण नहीं था, संतों ने अवश्य ही पतिव्रता नारी की प्रशंसा की है। कबीरदास के अनुसार-

'पतिबरता मैली भली, काली कुचित कुरूप।
पतिबरता के रूप पर बारो कोटि स्वरुप। ।'[8]

सामाजिक मूल्यों के उच्च आदर्शों के लिए ही संतों ने पतिव्रत धर्म की महत्ता को प्रतिपादित किया है। इस प्रकार संतों ने जाति-पांति का भेद मिटाकर सबको समान सामाजिक स्तर देने का कार्य किया उनका यह प्रयत्न जहाँ एक ओर उन्हें व्यवस्था के विरोध में खड़ा करता है। वहीँ दूसरी ओर एक नयी सामाजिक व्यवस्था की ओर संकेत भी करता है। तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के प्रति जनसाधारण को सचेत करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। समाज में व्याप्त सामन्ती व्यवस्था को समाप्त करने के लिए सन्त विद्रोही के रूप में जाने जाते हैं। संतों ने परम्परागत रूढि, मिथ्या प्रदर्शनों, अंधविश्वासों एवं अनुपयोगी रीति रिवाजों का कट्टर विरोध किया। यही कारण है कि उन्होंने समाज में व्याप्त सामाजिक- धार्मिक बुराइयों की कटु आलोचना की।

'अरे इन दोउन राह न पाई, हिंदुअन की हिंदुआई देखी, तुरकन की तुरकाई।'

सन्तों के मतानुसार परमात्मा को प्रेमभाव की पूजा अच्छी लगती है इसलिए उन्होंने सच्ची पूजा पद्धति का प्रतिपादन किया।

'सन्तों अनिन भगति यह नाहीं जब लग सिरजत मन पांचों गुण व्याप्त है या माही।

सन्त साहित्य का विकास:

किसी भी साहित्य के विकास में उस समय की परिस्थितियों का विशेष महत्व होता है, क्योंकि साहित्यकार स्वयं समाज में रहकर उन परिस्थितियों से परिचित होता है। सन्त साहित्य के विकास को प्रभावित करने वाली तत्कालीन परिस्थितियां-

1. धार्मिक परिस्थितियां -

भारतीय इतिहास का मध्यकाल धार्मिक दृष्टि से अनेक कुप्रथाओं, पाखंडों, मिथ्याचारों और बाह्याचारों के लिए प्रसिद्ध है। मध्ययुग में समाज में पण्डितों का महत्व बहुत बढ़ गया था। जप, तप, स्नान, व्रत सब कुछ पण्डित के बिना व्यर्थ माने जाते थे। समाज में पुरोहितों का स्थान परम्परागत और रूढ़िवादी बन जाने से उनकी सदाचार प्रवणता गायब होने लगी और वे अपने पद का गलत इस्तेमाल करने लगे थे। किसी पढ़े-लिखे ज्ञानी व्यक्ति को पुरोहित बनाने के बजाय पूर्व पुरोहित के परिवार से ही उसके वंशज को पुरोहित बना दिया जाता था।

विभिन्न धर्मों में उनके अन्दर ही अनेक सम्प्रदाय प्रचलित थे तथा वह खुद ही आपस में लड़ते-झगड़ते रहते थे। मुग़ल बादशाह हिन्दुओं को जबरन इस्लाम धर्म अपनाने के लिए विवश कर रहे थे। ऐसी परिस्थितियों में हिन्दू अपनी आत्मरक्षा के लिए ईश्वर की शरण लेने लगे थे। रैदासजी के समय भारतीय समाज में धर्म व्यवस्था अत्यन्त अस्त-व्यस्त थी। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही समाजों की धार्मिक एवं व्यावहारिक बातों में आडम्बर और मिथ्याचार बढ़ता जा रहा था। सभी धर्म आपस में अपने धर्म का गुणगान और दूसरे धर्म का विरोध कर रहे थे। धर्म की ओट में सभी जनता को ठगने का जोर-शोर से प्रयास कर रहे थे।[9]

2. राजनैतिक परिस्थितियां -

भारतीय इतिहास का मध्यकाल अनेक कारणों से संक्रमण का काल माना जाता है। राजनीतिक सत्ता के आधारभूत परिवर्तन से युग की समस्त गतिविधियाँ प्रभावित हुई। जहाँ एक ओर उत्तरी भारत के राजा पारस्परिक युद्ध में व्यस्त थे, वहीं दूसरी ओर विदेशी आक्रान्ताओं के आक्रमण प्रारम्भ हो गए थे। विदेशियों द्वारा भारत पर लगातार आक्रमण होते रहे और इनमें कई तो प्रलयंकारी आक्रमण थे। सन्त कवियों के प्रादुर्भाव से पूर्व भारत पर विदेशी मुसलमानों के अनेक आक्रमण हो चुके थे। मध्ययुग में मुख्यत: दो धर्मों की प्रधानता थी- हिन्दू तथा इस्लाम धर्म।

इन दोनों धर्मों के अलावा जैन एवं बौद्ध धर्म भी मुख्य थे। इस समय के साथ-साथ हिन्दू धर्म में कई प्रकार की विकृतियों का समावेश हो गया। हिन्दू धर्म में अनेक देवी-देवताओं को पूजने का विधान था। उनके अनेक सम्प्रदाय विकसित थे, जिनमें वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर सम्प्रदाय प्रमुख थे। इन सभी में शैव और वैष्णव मतों का प्राधान्य था इसके साथ ही शाक्त मत का भी बोलबाला भी था। कर्मकाण्ड के तहत धर्म विकृत होकर पाखण्ड एवं ढोंग का पर्याय बनकर रह गया था।[10]

मुस्लिम शक्ति एवं साम्राज्य ने साहित्य का दृष्टिकोण ही बदल डाला था। सन्तों ने यह महसूस किया कि इन विधर्मी शासकों की क्रूरता अपरिमित शक्ति एवं नृशंसता से तलवार के बल पर नहीं निपटा जा सकता। अत: सन्तों ने इसके मुकाबले के लिए अलग ही मार्ग पकड़ा। मध्यकालीन शासकों ने अपनी राजनीतिक शक्तियों का दुरूपयोग सबसे अधिक किया। इसका परिणाम आम जनता को भुगतना पड़ा। ये राजनीतिक परिस्थितियां ही सन्त कवियों के लिए प्रेरणा स्रोत बनी।

3. सामाजिक परिस्थितियां -

समाज का सम्बन्ध राजनीति और धर्म दोनों से होता है जब समाज में राजनीतिक परिस्थितियां सुचारू रूप से नहीं चल रही होती है तो जनसमुदाय के आचरण और व्यवहार में परिवर्तन आ ही जाता है। भारतीय समाज में नियन्त्रण शक्ति के अभाव के कारण सामान्य नैतिक आचरणों के पालन की भी कोई आवश्यकता नहीं रह गयी थी। सभी पारिवारिक मर्यादाएं भंग हो चुकी थी। इस प्रकार उस समय की सामाजिक परिस्थितियों ने ही सन्त कवियों को समाज सुधार के लिए प्रेरित किया था। वह समाज में फैली व्यवस्था में सुधार लाना चाहते थे। इन्होंने समाज में व्याप्त बुराइयों का खुलकर विरोध किया। उनके इसी जीवन आचरण एवं उनकी वाणियों ने समाज में नई क्रान्ति पैदा कर दी, जिसका प्रभाव आज भी दिखायी देता है।

सन्त और भक्त में अन्तर -

संतों का निर्गुण उपास्य रूपवान और अरूप होते हुए भी भक्तों के सगुण उपास्य से भिन्न है। मानव जीवन की सम्पूर्ण शक्ति, सौन्दर्य और शील का आविर्भाव उन्हीं में मिलता है। इसी कारण से संतों का निर्गुण उपास्य केवल अनुभूति और साधना मात्र होने के कारण रहस्यपूर्ण है, और भक्तों के सगुण उपास्य प्रत्यक्ष होने के कारण प्रेम और श्रद्धा का पात्र है। निर्गुण एवं सगुण कवियों में हमें रस सम्बन्धी अन्तर भी दिखलाई पड़ता है। निर्गुण काव्यधारा भक्ति शान्त और वीर इसकी वह त्रिवेणी है जिसमें अवगाहन कर मानव जाति अपने युग के कालुष्य धो सकती है।[11] इसके विपरीत सगुण काव्यधारा में हमें श्रृंगार और भक्ति के मधुमय माधुर्य भाव रुपी शिशु की रसमयी लीलाओं का वैभव मिलता है। सन्त और भक्त की साधना में भी पर्याप्त अन्तर होता है।

संतों ने ईश्वर को रहस्यवादी एकेश्वरवादी माना है इसके विपरीत भक्तों ने ईश्वर के विभिन्न रूपों अवतारों और लीलाओं का वर्णन किया। संतों के साहित्य में बुद्धि और विचारात्मकता होती है, जबकि भक्त परम भाव प्रवण श्रद्धामूलक और अनुभूति प्रधान है। सगुण भक्तों का मुख्य उद्देश्य ईश्वर के सगुण साकार आनन्दमय और अलौकिक रूप का वर्णन करना है। और संतों ने जनसामान्य में चेतना और जागृति फ़ैलाने का कार्य किया। सगुण भक्त कवियों ने प्राय: अपनी काव्यभाषा के रूप में संस्कृत भाषा का इस्तेमाल किया जो साधारण जनसामान्य आसानी से समझ नहीं सकते इसके विपरीत निर्गुण कवि ने जनसामान्य की प्रचलित सामान्य बोलचाल की भाषा को अपने काव्य रचना के लिए लिया। जिससे जनसामान्य उनके द्वारा कही गयी बातों को अच्छी तरह से समझ सके और अपना विकास भलीभांति कर सके।[12]

सन्त काव्य की प्रासंगिकता -

सन्त साहित्य बड़ा एवं विस्तृत साहित्य है, सन्त साहित्य का आधार है अनुभव ज्ञान। संतों ने न आगम, निगम और पुराणों को महत्व दिया न कुरान को। उनका दृष्टिकोण पूर्णत: बौद्धधर्म की विचारधारा से भी अनुप्रमाणित नहीं है। भारतीय संस्कृति का मूलाधार वेद

रहे हैं, किन्तु सन्तों के युग तक वेदों का महत्व क्षीण हो गया था। वेद मात्र वेदान्तियों की चीज बनकर रह गए थे, वेदों के सार से उन्हें कोई लेना-देना नहीं था। यही हाल सभी धर्मग्रंथों और शास्त्रों का था। लोक और जनसामान्य से उनका कोई रिश्ता-नाता नहीं रह गया था। इस समय पूरा समाज ही पथभ्रष्ट था। सन्त सुन्दरदास ने राजा, प्रजा, पण्डित, मुल्ला सभी का विरोध करते हुए कहा है-

"सब कोऊ भूलि रहे इहि बाजी।
आप आपुने अहंकार में, पाति साहि कहा पाजी।
पण्डित भूले वेद पाठ करि, पढ़ी कुरान कौ काजी।
वे पूरब दिशि करै दण्डवत, वे पच्छिमही, निवाजी।"13

संतों के सम्पूर्ण साहित्य का सृजन ही धर्म को दृष्टिगत रखकर हुआ है, इतना अवश्य है कि धर्म के क्षेत्र में उन्होंने एक क्रान्ति उपस्थित कर दी, परन्तु फिर भी जिस कठोरता से रूढ़ियों का विरोध किया उसी दृढ़ता से उन्होंने बुद्धिवादी सिद्धान्तों की स्थापना भी की है। सन्त कवियों की जो दूसरी प्रमुख प्रवृत्ति है वह है रहस्यवाद की भावना का होना। आचार्य शुक्ल के अनुसार- 'साधना के क्षेत्र में जो अद्वैत है साहित्य के क्षेत्र में वही रहस्यवाद। ' जब साधक भावना के सहारे आध्यात्मिक सत्ता की रहस्यमयी अनुभूतियों को वाणी के द्वारा शब्दमय चित्रों में सजाकर रखने लगता है, तभी साहित्य में रहस्यवाद की सृष्टि होती है।[14]

मध्यकाल में सामाजिक व्यवस्था से जुड़े हुए अनेक मुद्दों के सन्दर्भ में धर्म की आड़ ली जाती थी इसलिए संतों ने उनका विरोध करने के लिए धर्म की व्यवस्था में से तर्क ढूँढने का प्रयत्न किया। जाति पांति, छुआछूत और ऊंच-नीच के भेदभाव को समाप्त करने के लिए उन्होंने आध्यात्मिक और दार्शनिक मान्यताओं का आधार ग्रहण किया। सन्त कवि रैदास जी को पाखण्ड और पाखंडियों से घृणा थी उन्हें पूजा, जप, तप, तीर्थयात्रा आदि सभी व्यर्थ लगते थे। रैदासजी कहते थे कि नदियों के जल में स्नान करने से मुक्ति नहीं मिलती।

सन्त कवियों ने काव्य की रचना 'स्वान्त सुखाय' की भावना से नहीं वरन यह लोक कल्याण की भावना से अभिप्रेरित होकर की है। सन्त कवियों के सम्पूर्ण काव्य में लोकहित की भावना विद्यमान थी। रामकाव्य के प्रमुख कवि तुलसीदास ने भी उसी काव्य को सार्थक बताया है, जो सबका हित करती है।

'कीरति भनिति भूति भाल सोई। सुरसरि सम सबका हित होई।'

सन्तों ने सर्वे भवन्तु सुखिन: की भावना से अपने काव्य का निर्माण किया। संतों ने अपने काव्य में दया और करुणा को बहुत महत्व दिया है। संतों के अनुसार जिसने स्वयं पीड़ा को समझा है, वही दूसरों के दर्द को समझ सकता है। उच्च और महान तो वही है, जिसके हृदय में दया एवं करुणा है। संतों ने सभी को समान भाव से देखा है, उनकी दृष्टि में कोई भी छोटा या बड़ा नहीं है अपितु वह तो मनुष्य मात्र है। संतों के अनुसार लोगों को व्यवहार में ऐसा आचरण लाना चाहिए जिससे समस्त संसार में भेदभाव के समस्त दोष मिट जाये, यह समानता समाज के हर क्षेत्र में व्याप्त हो।

मध्यकाल की समस्याएं वर्तमान समाज में और अधिक विकटता के साथ व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को संतृप्त कर रही है। मानव जहाँ एक ओर ज्ञान-विज्ञान के नवीन अविष्कार कर रहा है, वहीँ दूसरी ओर वह हिंसा, असत्य, ऐश्वर्य, वैभव की चमक में नैतिकता भूल रहा है। सम्पन्न होते हुए भी वह सुखी नहीं है इस दृष्टि से सन्त साहित्य उतना ही प्रासंगिक है, जितना कि वह मध्ययुग में था। संतों ने समाज में व्याप्त रूढ़ियों एवं बाह्याडम्बरों का डटकर विरोध किया।

'थोथी काया थोथी माया। थोथा हरि बिन जनम गंवाया। थोथा पण्डित थोथी बानी। थोथी हरि बिन सबै कहानी। थोथा मन्दिर भोग विलास। थोथी आन देव की आसा। सांचा सुमिरन नाम विसांसा। मन बच कर्म रहै रैदासा।'

इस प्रकार संतों ने युग में प्रचलित समस्त दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक विचारधाराओं में अंतर्भूत सनातन सत्य को ग्रहण तो किया है, लेकिन उसे प्रखर मेधा से

अपनाकर अनुभव की कसौटी पर कसकर, विवेक की तराजू पर तौलकर तथा मौलिकता की छाप लगाकर प्रस्तुत किया।

सन्त काव्य का समाजशास्त्र -

निर्गुण काव्यधारा का उदय रूढ़िवादी अन्धविश्वास प्रधान धार्मिक सम्प्रदायों की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। सच्चे निर्गुण कवि पन्थ निर्माण की प्रवृत्ति को हेय समझते थे। ये लोग अलौकिक प्रतिभा संपन्न होते थे, सैंकड़ों साधु संत उनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर उनके शिष्य हो जाते थे।15 सन्त कवियों का एकमात्र उद्देश्य काव्य रचना करना नहीं था अपितु सन्त कवि इनके माध्यम से समाज में सुधार लाना चाहते थे। हिन्दी साहित्य में शायद ही ऐसी कोई धारा हो, जिसमें लोककल्याण की ऐसी तीव्र भावना व्याप्त हो। मध्यकाल में वर्ग एवं उससे सम्बन्धित भेदभाव अपने चरम सीमा पर था। मध्यकाल में जनसाधारण का जीवन जितना कष्टपूर्ण एवं दयनीय था, उतनी ही विलासिता शान औ शौकत एवं सम्पन्नता का जीवन शासक वर्ग एवं उच्च वर्ग यापन कर रहे थे। साधारण जनता चारों ओर निराशा से घिरी हुई थी। इन विकट परिस्थितियों में

साधारण जनता को केवल ईश्वर का ही सहारा था। जनमानस को दुखों से मुक्ति देने के लिए सन्त कवियों ने भक्ति का मार्ग बताया। तत्कालीन सन्त उच्चकोटि के महान कवि भी थे, इनकी काव्य सरिता सगुण एवं निर्गुण दो धाराओं में प्रवाहित हुई। जहाँ सगुण भक्तिधारा ने रामाश्रयी और कृष्णाश्रयी दो शाखाओं में विभक्त होकर दुखों से संतृप्त लोगों को शीतलता प्रदान की, वहीं निर्गुण भक्तिधारा की ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी शाखाओं ने आडम्बरों में उलझी पारस्परिक वैमनस्य से पीड़ित नैतिकता भूल चुके, अज्ञानता के अन्धकार में भटकते हुए समाज को प्रेम, सहृदयता, सहकार, सत्य, अहिंसा, नैतिकता, सच्चे ज्ञान और सहज भक्ति का मार्ग दिखाया। भक्ति काव्य की यह लहर दक्षिण से प्रारम्भ होकर सम्पूर्ण भारत को रस विभोर करने लगी। संतों ने अनपढ़ जनता तक अपने विचार पहुँचाने के लिए संस्कृत भाषा के स्थान पर अपने बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया। कई प्रसिद्ध सन्त शूद्र एवं निम्न जाति के थे।

उत्तर भारत में कबीर जुलाहा, कृष्णराम व तुकाराम शूद्र, भावजी पटेल एवं कनकदास अन्त्यज, रहीम और रसखान मुस्लिम थे। इन संतों का समाज में बहुत ही आदर तथा सम्मान था। मध्ययुग में संघर्षरत भारतीय समाज को जिस तरह संतों ने नया आयाम दिया वह अद्वितीय एवं चकित करने वाला है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन कर भटकी हुई मानव प्रजाति को सन्मार्ग पर लाने का कार्य संतों ने जिस सहजता से किया वह हमें आश्चर्यचकित करता है।

संतों का कार्यकाल संघर्षों का युग था एक ओर इस्लाम धर्म अपने विस्तार एवं पुष्टि में प्रयत्नशील था तो दूसरी ओर वैदिक धर्मानुयायी सतर्कता से अपनी स्थिति की चौकसी में संलग्न थे। इनके साथ-साथ जनसामान्य भी क्रियाशील था। मध्ययुगीन संतों के बहुत पहले सामान्य जनता ने वैदिक धर्म पद्धति के विरोध में आन्दोलन का श्रीगणेश कर दिया था जिसका प्रतिफल बौद्ध और जैन मत थे। परन्तु यह आन्दोलन उद्देश्य की पूर्ति में सफल न हो सके संतों ने अपनी पूर्ववर्ती स्थिति से प्रेरणा लेकर उनके द्वारा बनाये गए मार्ग को प्रशस्त करने तथा सँवारने का प्रयास किया।[16]

हिंदी साहित्य के सन्त कवियों ने भारतीय समाज को प्रत्येक क्षेत्र में गहराई से प्रभावित किया है, इन्होंने अपने शांतिप्रिय स्वभाव और निर्दोष व्यक्तित्व से प्रतिकार, प्रतिहिंसा, प्रतिशोध, वैमनस्य और भेदभाव के वंश से ग्रस्त मानव समाज को कल्याणकारी पथ पर अग्रसर किया। मध्यकालीन निर्गुण सन्त काव्यधारा का भारतीय धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है। संतों की बानियाँ कालजयी और शाश्वत है। जिनमें समाज को प्रभावित करने की अद्भुत क्षमता विद्यमान है। संतों का समग्र साहित्य जीवन के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण का है।

संतों का साहित्य अतीत से अधिक वर्तमान में प्रासंगिक प्रतीत होता है। संतों ने सबसे बड़ा कार्य समाज में प्रचलित जटिल विचारधाराओं, साधनों और सांप्रदायिक आचारों के सहजीकरण का किया था। सहजीकरण की अपनी इस प्रवृत्ति के कारण वे मध्यकालीन भक्तों से अलग खड़े दिखलाई पड़ते हैं। बुद्धिवादिता, सदाचरणप्रियता,

सामाजिक और आध्यात्मिक साम्यवाद विचारात्मकता आदि उनकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। इसीलिये उनकी परंपरा अन्य भक्तों की परंपरा से विलक्षण और निरपेक्ष दिखाई पड़ती है।[17]

सन्त सच्चे अर्थों में समाज सुधारक और महान थे। ओमप्रकाश त्रिपाठी के अनुसार- "सन्त कवियों का सम्पूर्ण साहित्य लोकहित के इर्द-गिर्द निर्मित है उस समय चारों तरफ अन्याय अत्याचार, शोषण एवं उत्पीडन का साम्राज्य छाया हुआ था। समाज के सारे बंधन रूढिग्रस्त हो गए थे विशेषत: मध्यमवर्गीय समाज शासकों एवं ठेकेदारों से त्रस्त था। वह असहाय और विवश था उसके लिए सारे रास्ते बंद थे शासक वर्ग की ओर से सुरक्षा का अभाव तो था ही अत: तरह-तरह की यातनाएं उन्हें सहनी पड़ती थी। संतों का कोमल ह्रदय ऐसे ह्रदय विदारक दृश्य को सहन नहीं कर सका।"[18]

लोकहित की अनुभूति ने ही संतों को महान सन्त बनाया था, उनकी साधना चिंतन आदि का आधार सम्पूर्ण लोक था। इस युग की मानव चेतना रूढ़ियों को त्यागकर चलने का प्रयास कर रही थी, तदनुसार उस समय का साहित्य सृजन भी एक अपनी निजी परंपरा पर निर्मित होने लगा था।[19] संतों द्वारा प्रतिपादित जीवन मूल्य ही आज की आवश्यकता है। इन्हें गंभीरता से जीवन में उतारना होगा तभी हम ऊँच-नीच, जाति-पांति, बहुदेवोपासना, वर्ग संघर्ष भौतिकवादी दृष्टिकोण से मुक्ति पा सकेंगे।[20]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिंदी निर्गुण काव्यधारा की पृष्ठभूमि, पृष्ठ-28
2. सन्त काव्य में परोक्ष सत्ता का स्वरुप, पृष्ठ- 44
3. शर्मा, राजकुमार "हिंदी साहित्य का इतिहास" पृष्ठ- 88
4. ठाकुर, हरिनारायण "दलित साहित्य का समाजशास्त्र" पृष्ठ 214
5. इलियट, सर चार्ल्स (1921) "हिन्दुज्म एंड बुद्धिज्म"

6. हिंदी निर्गुण काव्यधारा की पृष्ठभूमि, पृष्ठ-26
7. त्रिपाठी, ओमप्रकाश "सन्त साहित्य और लोक मंगल" पृष्ठ-57
8. सन्त और सुधार सार, प्रथम खंड,पृष्ठ-187
9. त्रिपाठी, ओमप्रकाश "सन्त साहित्य और लोक मंगल" पृष्ठ-52
10. त्रिपाठी, ओमप्रकाश "सन्त साहित्य और लोक मंगल" पृष्ठ-52
11. हिंदी निर्गुण काव्यधारा की पृष्ठभूमि, पृष्ठ-37
12. हिंदी निर्गुण काव्यधारा की पृष्ठभूमि, पृष्ठ-38
13. सुन्दरदास "सन्त सुधासार" प्रथम खंड, पृष्ठ- 658
14. शर्मा, रामकिशोर "कबीर ग्रन्थावली", पृष्ठ- 54
15. हिंदी निर्गुण काव्यधारा की पृष्ठभूमि, पृष्ठ-34
16. सन्त परंपरा का विकास और बाबरी पन्थ, पृष्ठ-13
17. हिंदी निर्गुण काव्यधारा की पृष्ठभूमि, पृष्ठ-35
18. त्रिपाठी, ओमप्रकाश "सन्त साहित्य और लोक मंगल" पृष्ठ-22
19. बाबरी पन्थ के हिंदी कवि, पृष्ठ- 10
20. बाबरी पन्थ के हिंदी कवि, पृष्ठ- 16

दिनेश कुमार गुप्ता
प्रवक्ता, अग्रवाल महिला शिक्षक प्रशिक्षण
महाविद्यालय, गंगापुर सिटी, जिला- सवाई
माधोपुर (राजस्थान)322201
दूरभाष : 9462607259
अणुमेल : dineshg.gupta397@gmail.com

'पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्री विमर्श'

सुरभी बंसल

जब अजनबी थे हम
तुमने मुझे जानना चाहा
मैंने भी हंसकर
अपने बारे में तुम्हें बताया
हम दोस्त बने
जब तुमने दोस्ती का हाथ बढ़ाया
फिर तुमने मुझे प्रेमिका कहा
जब मैंने प्रेम में अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया
तो सबसे पहले
तुमने ही मुझे
बनाया 'वेश्या'!

एक औरत का वेश्या बनना:- मंजरी श्रीवास्तव

हिंदी में विमर्श शब्द अंग्रेजी के 'डिस्कोर्स' का पर्याय है और 'डिस्कोर्स' लेटिन शब्द 'Discursus (डिस्कर्सस) का, जिसका अर्थ है बहस, संवाद, वार्तालाप और विचारों का आदान-प्रदान। पौराणिक समाज में महिलाओं को देवी लक्ष्मी का अवतार माना जाता था पर यह भी सच है की आज स्थिति उस समय से बिलकुल विपरीत है। उनसे अभद्र व्यव्हार किया जाता है। उन्हें मनहूस माना जाता है। उन्हें सिर्फ ऊपरी मन से देवी मान लेना ही काफी नहीं है जब तक उनकी स्थिति को सुधारने के लिए प्रयास न किया जाये। महिलाओं के उत्थान के लिए यह बेहद जरुरी है की पुरुष आगे आये और प्रयास करे जिससे समाज में सकारात्मक बदलाव आ सके।

हम सब की ज़िंदगी में महिलाओं का बहुत अहम किरदार है। उनके बिना हम अपने अस्तित्व कल्पना भी नहीं कर सकते। जीवन की निरंतरता को बनाये रखने के लिए महिलाओं का होना बेहद जरुरी है।

पहले उन्हें सिर्फ इसी लायक समझ जाता था की वे घर का काम करे, झाड़ू-पोछा लगाए, खाने पीने का ध्यान रखे पर अब ऐसा नहीं है। महिलाएं घर के कामकाज के साथ साथ बाहरी दुनिया में भी अपनी प्रतिभा दिखा रही है। किसी भी सभ्य समाज अथवा संस्कृति की अवस्था का सही आकलन उस समाज में स्त्रियों की स्थिति का आकलन कर के ज्ञात किया जा सकता है। विशेष रूप ये पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्रियों की स्थिति सदैव एक-सी नहीं रही।

वैदिक युग में स्त्रियों को उच्च शिक्षा पाने का अधिकार था, वे याज्ञिक अनुष्ठानों में पुरुषों की भांति सम्मिलित होती थीं। किन्तु स्मृति काल में स्त्रियों की स्थिति वैदिक युग कीभांति नहीं थी। पुत्री के रूप में तथा पत्नी के रूप में स्त्री समाज का अभिन्न भाग रही लेकिन विधवा स्त्री के प्रति समाज का दृष्टिकोण कालानुसार परिवर्तित होता गया।

जब महिलाओं ने अपनी सामाजिक भूमिका को लेकर सोचना-विचारना आरंभ किया, वहीं से स्त्री आंदोलन, स्त्री विमर्श और स्त्री अस्मिता जैसे संदर्भों पर बहस शुरु हुई। नारीवाद की सर्वमान्य कोई परिभाषा देना मुश्किल काम है, यह सवाल है राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाओं के सोचने के तरीके और उन विचारों की अभिव्यक्ति का है।

स्त्री-विमर्श रूढ़ हो चुकी मान्यताओं, परंपराओं के प्रति असंतोष व उससे मुक्ति का स्वर है। पितृसत्तात्मक समाज के दोहरे नैतिक मापदंडों, मूल्यों व अंतर्विरोधों को समझने व पहचाने की गहरी अंतर्दृष्टि है। विश्व चिंतन में यह एक नई बहस को जन्म देता है, पितृक प्रतिमानों व सोचने की दृष्टि पर सवालिया निशान लगाता है, आखिर क्यों स्त्रियाँ अपने मुद्दों, अवस्थाओं, समस्याओं के बारे में नहीं सोच सकती? क्यों उनकी चेतना इतने लम्बे अरसे से अनुकूलित, अनुशासित व नियंत्रित की जाती रही है, क्यों वे साँचों में ढली निर्जीव मूर्तियाँ हैं?

जब भी स्त्री विमर्श की बात होती है तो उसके केंद्र में आज भी मध्यवर्गीय स्त्री का जिक्र होता है।

इसकी एक बड़ी वजह साहित्यकारों और विमर्शकारों का खुद मध्यवर्गीय पृष्ठभूमि से जुड़ा हुआ होना है। भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति अंतर्विरोधों से भरी हुई है। परंपरा से नारी को शक्ति का रूप माना गया है, पर आम बोलचाल में उसे अबला कहा जाता है। मध्यकालीन भक्त कवियों के यहां भी स्त्री को लेकर अंतर्विरोधी उक्तियां विद्यमान हैं। आज भी हमारे समाज और साहित्य में स्त्री के प्रति कमोबेश यही अंतर्विरोधी रवैया मौजूद है।

भारत के बहुस्तरीय सामाजिक ढाँचे में स्त्री का संघर्ष सिर्फ देह की स्वतंत्रता या लिंग की लड़ाई तक सीमित नहीं है। यहाँ स्त्री को कई मोर्चे पर एक साथ लड़ना है और यौनिक स्वतंत्रता इस लड़ाई का अनिवार्य हिस्सा है। जैविक संरचना के आधार पर लैंगिक भेद को सही मानने और गलत मानने का भी मूल वर्गीय आधार से ही नाभिनाल सम्बद्ध है।

जेंडर सामाजिक-सांस्कृतिक रूप में स्त्री-पुरुष को दी गई परिभाषा है, जिसके माध्यम से समाज उन्हें स्त्री और पुरुष दोनों की सामाजिक भूमिका में विभाजित करता है। यह समाज की सच्चाई को मापने का एक विश्लेषणात्मक औजार है'। मैत्रयी कृष्णराज लिखती हैं समाज में जितनी भी आर्थिक और राजनैतिक समस्याएं हैं उनका संबंध जेंडर से है। 'जेंडर लिंग आधारित श्रम का विभाजन हैं जिसे पितृसत्ता ने सामाजिक अनुशासनों के द्वारा तय किया गया ।

जिस तरह भाषा में शब्दों के वर्गीकरण के लिए उनके सामाजिक व्यवहार को आधार बनाया गया और उन्हें स्त्रीलिंग, पुल्लिंग व न्यूट्रल रूप में विभाजित किया गया उसी प्रकार सामाजिक संरचना में 'सेक्स' को सामाजिक प्रकिया के तहत स्त्री और पुरुष की निर्धारित भूमिकाओं में ढाला गया। स्त्री और पुरुष दोनों ही जैविक संरचना हैं यह सत्य है इन्हें बदला नहीं जा सकता। लेकिन इनकी पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक भूमिका का निर्धारण जब किया जाता है तो इनके अपने स्वतंत्र अस्तित्व पर प्रश्न अंकित हो जाता है, जिसका जवाब जेंडर देता है। 'जेंडर अस्मिता के पहचान का सबसे मूक घटक

है जो हमें स्त्री व पुरुष की निर्धारित सीमा को परिभाषित करने और दुनिया को देखने के नजरिए की नाटकीय भूमिका को बताता है'।जैविक संरचना के आधार पर लैंगिक भेद को सही मानने और गलत मानने का भी मूल वर्गीय आधार से ही नाभिनाल सम्बद्ध है।

यह केवल लिंगों के बीच के अंतर को नहीं बताता वरन सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक स्तर पर सत्ता से इसके संबंध को भी परिभाषित करता है। स्त्री मुक्ति का अर्थ पुरुष हो जाना नहीं है। स्त्री की अपनी प्राकृतिक विशेषताएँ हैं, उनके साथ ही समाज द्वारा बनाये गये स्त्रीत्व के बंधनों से मुक्ति के साथ, मनुष्यत्व की दिशा में कदम बढाना, सही अर्थों में स्वतंत्र्ता है। स्त्री को अपनी धारणाओं को बदलते हुए, जो भी घटित हुआ, उसे नियति मानने की मानसिकता से उबरने की आवश्यकता है, लेकिन साथ ही पुरुष वर्ग को ही दोषी मानकर कठघरे में खडे करने वाली मनोवृत्ति बदलनी होगी।

आधुनिक साहित्य में स्त्री विमर्श सर्वाधिक चर्चित विषय रहा है। सीमोन द बोउवार की 'द सेकण्ड सेक्स' का हिन्दी अनुवाद कर प्रभा खेतान ने स्त्री विमर्श की नींव तैयार की और इससे पहले सीमन्तनी उपदेश ने इसका आधार बनाया और इन्हीं से प्रेरित होकर आधुनिक लेखिकाएँ स्त्री के प्रति समाज की मानसिकता व रूढियों पर आधारित पारिवारिक बंधनों से मुक्ति की आकांक्षा में प्रयत्नशील नजर आती हैं।

हिंदी साहित्य में भी स्त्री विमर्श कई धाराओं में विकसित हुआ और उसका मूल कारण लेखिकाओं का अपना अनुभव जगत और अपनी अलग-अलग सामाजिक स्थिति है। जिस 'मर्दवाद' के खिलाफ स्त्री विमर्श खड़ा हुआ है उसकी प्रतिक्रिया में 'स्त्रीवाद' का वह रूप भी आता है जहाँ वह मर्दवादी अवधारणा पर ही खड़ा दिखाई देता है लेकिन ऐसी प्रतिक्रिया पश्चिम के स्त्री विमर्श का भी हिस्सा रही है। मध्यवर्गीय स्त्री का पूरा संघर्ष दैहिक स्वतंत्रता से लेकर आर्थिक स्वतंत्रता तक सिमटा हुआ है। पुरुष के लिए नारीत्व अनुमान है और नारी के लिए अनुभव, अतः अपने जीवन का जैसा सजीव चित्र् वह हमें दे सकेंगी, वैसा पुरुष बहुत साधना के उपरान्त भी शायद ही दे सके।

स्त्री स्वतंत्रता की बात उसी परिप्रेक्ष्य में की जा सकती है। निरपेक्ष स्वतंत्रता जैसी कोई चीज नहीं हो सकती। स्वतंत्रता का मूल अभिप्राय है 'निर्णय की स्वतंत्रता' और स्त्री स्वतंत्रता का रूप क्या होगा, यह स्वयं स्त्रियों को ही तय करना है, यह निर्णय कुछ 'विशिष्ट' महिलाओं द्वारा नहीं लिया जा सकता। हिंदी साहित्य में भी कुछ स्त्री लेखकों को स्त्री-विमर्श का नेतृत्व करने वाला समझना ऐसी ही भूल है। किसी भी लेखक की मुखरता नहीं बल्कि उसका लेखन उसकी साहित्यिक जिम्मेदारी का सबूत होता है। साहित्य किसी भी सैद्धांतिकी से प्रभावित हो सकता है और नया सिद्धांत भी गढ़ सकता है लेकिन साथ ही उसका एक बड़ा सामाजिक सरोकार होता है और यहीं से स्त्री-पुरुष के बदले मनुष्यता की जमीन तैयार होती है।

सन्दर्भ सूची

1. स्त्री विमर्श: भारतीय परिप्रेक्ष्य (डॉ. के.एम. मालती)
2. प्रभा खेतान के साहित्य में नारी-विमर्श
3. स्त्री (कला यादव)

सुरभी बंसल

सुरभी बंसल दिल्ली निवासी हैं। इन्होंने 12वी कक्षा मे अपने स्कूल मे हिंदी विषय मे टॉप किया था, इन्होंने जानकी देवी मेमोरियल कॉलेज (डी. यू.) से बी.ए.हिंदी ऑनर्स (2016-19) किया था। 'हिंदी सिनेमा का विकास' नामक लेख 'समय के निकष पर हिंदी सिनेमा' मे प्रकाशित हो चुका है। स्नातकोत्तर के बाद, आई एच एम पूसा से बेकरी पाठ्यक्रम में डिप्लोमा (2019-2021) किया है।

ईमेल :- surbhisb.22@gmail.com

नए सांस्कृतिक परिवेश का आईना: नव-वामपंथी कविता

षैजू के

शोध सारांश: संस्कृति एक मानसिक अवधारणा है ,जो किसी समाज के जीवन चर्या संबंधी विश्वासों के समूह से बनती है। समाज इन विश्वासों आस्थाओं को धीरे धीरे अभ्यास और अनुभव से अर्जित करता है। समाज की वर्गीय संरचना भी अक्सर संस्कृति को प्रभावित करती है। एक समाज जब दूसरे समाज के संपर्क में आता है तो दोनों की ही संस्कृतियों में बहुत कुछ जुटता घटता है। किसी समाज के अपने भीतर होने वाले नवाचार भी संस्कृति को निरंतर गतिशील बनाए रखते है। कविता स्वयं एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है। दरअसल कविता का बुनियादी आवयविक संगठन बहुत प्राचीन है इसलिए इसे परिवर्तनों के आत्मसात करने में समय लगता है। अक्सर यह सामाजिक सांस्कृतिक गतिशीलता के अनुरूप अपने को बदलने ठालने में पिछ्ड़ जाती है। अब तक सांस्कृतिक संक्रमण धीमी गति से होता था, इसलिए कविता भी धीरे धीरे अपने को तदनुरूप ढाल लेती थी। लेकिन अब हालात पहले के जैसे नहीं है,यह नव वामपंथी कविता का दौर हैं। वर्तमान हालत बिगड़ने के कारण उसके प्रति नव वामपंथी कवियों के आवाज़ और प्रतिरोध भी आज सक्रिय हैं।

बीज शब्द: नव वामपंथी नयी दृष्टि, संस्कृति, प्रतिरोध, काव्यनुभूति, पूंजीवादी विरोध, संवेदना का स्वर, प्रेम की उमंग

भूमिका: आत्म सजगता कवि कर्म की बुनियादी शर्त है। खास तौर पर सांस्कृतिक संक्रमण के दौरान कवि के लिए आत्मसचेत रहकर परिवर्तनों की थाह लेना ज़रूरी हैं। परिवर्तनों की यह समझ ही उसे प्रतिरोध या आत्मसातीकरण का फैसला लेने की समझ भी देती है। सांस्कृतिक प्रक्रियाएं अक्सर इतने नामालूम ढंग से समाज में होती है कि उनके भीतर होकर, उनके प्रति आत्मसचेत रहना बहुत मुश्किल का काम होता है। नए सांस्कृतिक संक्रमण की खासियत यह है कि यह आकस्मिक और तीव्र होने के साथ- साथ नयी संचार प्रौद्योगिकी के पंखों पर सवार होकर सम्मोहक प्रभाव के साथ होता है।

अरुण कमल कविता रचने केलिए ऐसी प्रविधि के इस्तेमाल को ज़रूरी मानते हैं जिससे अधिक से अधिक को कम से कम में कहा जा सके। वे 'पुतली में संसार' नामक कविता में कहते हैं कि – "कविता सम्पूर्ण जीवन की कविता हो , ऐसा ही मैं ने सोचा और चाहा। भाषा भी एक तरह की नहीं,सब तरह की हो – मेरे भिक्षा पात्र में हर घर का अन्न हो।"[1] इसलिए ही उन्होंने खड़ीबोली हिन्दी कविता लिखते हुए भोजपुरी के अनेक शब्दों को ज्यों का त्यों उठाया।जैसे मुहावरों,स्वर भंगिमाओं,यहां तक कि सांस की भाप की आवाज़ को भी। यह प्रवृति उनकी कविता की अंतर्वस्तु और रूप दोनों के संदर्भ में सच हैं। जैसे-

"अपना क्या है इस जीवन में सब तो लिया उधार
सारा लोहा उन लोगों का अपनी केवल धार।"[2]

हमारे समय के रचनाकारों की काव्यनुभूति की संस्कृति में आए परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण दृश्य यहां अरुण कमल की कविता के जरिये नव वामपंथी कविता में देख सकते हैं। हमारे समय की वास्तविकता पहले के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा नृशंस, जटिल और नाटकीय है, जिसको बेनकाब करने में समर्थ काव्यभाषा का पारदर्शी होना निहायत ज़रूरी है। प्रमुख नव-वामपंथी कवि राजेश जोशी अपनी एक कविता में लिखा हैं-

"निश्छल और नंगी ऐसी हो भाषा
लुकाया ना जा सके जिसके भीतर कुछ भी
अपना दर्प, न दूसरों का छल
अपनी दुर्बलता, न दुश्मन का बल
छिपे नहीं जिसमें चरित्र की कालिख
छिपे नहीं आत्मा का खोट।"[3]

तात्पर्य यह है कि कवि कि जीवनानुभावों का दायरा जितना बड़ा होगा, उसकी काव्यनुभूति की संस्कृति में भी उतनी ही व्यापकता और गहराई होगी। कहना होगा कि व्यापक और गहरी सामाजिक -ऐतिहासिक चिंता से उत्पन्न तथा प्रखर राजनैतिक चेतना से लैस नव- वामपंथी कविता में भारतीय समाज की मुलगामी आलोचना दृष्टि की

सांस्कृतिक अभिव्यक्ति रेखांकन के योग्य है। सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में सक्रिय सुविधा में जीते हुए दुविधा की भाषा बोलनेवाले महारथियों के विभिन्न असुविधाजनक सवालों पर नव – वामपंथी कवियों की बौखलाहट स्वाभाविक हैं। जिसके चलते इनकी कविताओं में प्रश्नाकूलता के साथ ही विद्रोह की आकांक्षा भी हैं-

"ऐसा किया जाए कि....
एक साजिश रची जाए
बारूदी सुरंगे बिछाकर
उड़ा दी जाए
चुप्पी कि दुनिया।"[4]

जॉर्ज लुकाच ने मार्क्सवादी शब्दकर्मियों को सचेत करते हुए लिखा हैं कि- "मार्क्सवाद चिंतन का हिमालय है , लेकिन हिमालय के शिखर पर खड़े किसी खरगोश को यह न समझना चाहिए कि वह घाटी के हाथी से ऊंचा हैं।"[5] यह बात अन्य विचारधाराओं व आन्दोलनों के संदर्भ में भी उसी तरह सच है जिस हद तक मार्क्सवाद के संदर्भ में किसी जाती की संस्कृति का गहरा रिश्ता उसमें सौंदर्यबोध के विकसित होने की मौलिक चेष्टा से होता हैं। अतः नव वामपंथी हिन्दी कविता के संदर्भ में काव्यनुभूति की संस्कृति के बदलते आयामों की निशानदेही करने के दरम्यान यह भी देखना ज़रूरी हैं कि सौदर्यबोध के धरातल पर उसमें कहां और कि रूप में रचनात्मक प्रतिरोध के संभावनाशील व सार्थक बिन्दु मौजूद हैं और कहां इतिहास से फरार नकली क्रांतिकारिता व यथास्थितिवाद की अभिव्यक्ति हुई हैं। इस अंतर को बच्चों को माध्यम बनाकर रचित कविता के माध्यम से समझा जा सकता हैं-

"बच्चों के बारें में बनाई गयी ढ़ेर सारी योजनाएं
ढ़ेर सारी कविताएं लिखी गयी बच्चों के बारे में
बच्चों केलिए खोले गए ढ़ेर सारे स्कूल
ढ़ेर सारी किताबें बांटी गयी बच्चों के बारे में बच्चे बड़े हुए

जहां थे
वहां से उठ खड़े हुए बच्चे
बच्चों में से कुछ बच्चे
हुए बनिया , हाकिम और दलाल
हुए मालामाल और खुशहाल

बाकी बच्चों ने
सड़क पर कंकड़ कुटा
दुकानों में प्यालियां धोयी
साफ किया टट्टी घर
खाये तमाचे
बाज़ार में बिके कौड़ियों के मोल
गटर में गिर पड़े।"[6]

यह तथ्य हैं कि नयी महाजनी सभ्यता के इस दौर में वित्तीय पूंजीवाद, बाज़ारवाद एवं भूमंडलीकरण की प्रक्रिया के तहत बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा विभिन्न प्रकार की उपभोक्ता सामाग्री का आविष्कार कर तथा उन्हें लोगों की आवश्यकता का जनक बनाकर आज जो अंधाधुंध मुनाफा कमाया जा रहा है उन पर किसी न किसी रूप में विकासशील व अविकसित देशों के मासूम बच्चों के नन्हें नाज़ुक हाथों के खूनी धब्बे अवश्य मौजूद हैं। गोरख पाण्डेय की इस कविता में बच्चों के अतीत और वर्तमान की चिंता के साथ साथ उनकी भविष्योन्मुखता को लेकर भी आकांक्षा की अभिव्यक्ति हुई हैं , जो वस्तुतः कवि की ऐतिहासिक चेतना में उसकी रचनात्मक आकांक्षा के प्रवेश का स्वाभाविक परिणाम हैं। हालांकि कवि पूंजीवादी व्यवस्था की क्रूरता को वर्तमान के क्षण में पकड़ता हैं, पर बच्चों के माध्यम से मनुष्यमात्र के अतीत, वर्तमान की प्रीति और भविष्य के बारे में उसकी रचनात्मक आकांक्षा नव – वामपंथी कविता को वयस्कता प्रदान करती हैं ।

ग्रामशी ने विस्तार से समझाया हैं कि कैसे सामाजिक यथार्थ का चित्रण करनेवाले दो लेखकों में एक उसका प्रवक्ता होता है जबकि दूसरा कलाकार। अपने समय

के यथार्थ से जीवन द्रव्य प्राप्त कर कोई रचना किस प्रकार मनुष्य की संवेदनशीलता को ही नहीं, बल्कि विचारधाराओं की दुनिया को भी समृध्द करती हुई अन्ततः हमारे भीतर 'सहज न्याय का बोध' जगाती है। यह बात प्रमुख नव -वामपंथी कवयित्रि कात्यायनी की कविता से गुजरकर समझा जा सकता हैं। जिसमें चित्रण के धरातल पर यथातथ्यता और मूल्य निर्णय के धरातल पर प्रतिबद्धता विद्यमान है।–

"घनी घटायें उस दिन दुख की
छायी थी भोले मुख पर
आंखों में आंसू तैर रहे थे।
बस्ता बिना उतारे
आकार खड़ा हो गया
रोज़ की तरह झूला नहीं पकड़कर आँचल।
सज़ा मिली स्कूल में मुझे आज और यह
कहते कहते लुढ़क पड़े
आंखों से दो मोती गालों पर।

****

बिना किसी गलती के
जीवन में कितना कुछ सहना पड़ता है कितनों को
अभी कहां यह उसने जाना
जानेगा भी धीरे धीरे
सहज न्याय का बोध
अभी तक बना हुआ है
इसलिए आहत है,
दुख से भरा हुआ है।"[7]

स्मरणीय है कि नागार्जुन यदि बीसवीं शताब्दी के बड़े कवियों में एक है तो केवल 'हरिजन गाथा' तथा 'भोजपुर' पर लिखी क्रांतिकारी कविताओं के कारण ही नहीं, बल्कि 'दंतुरित मुस्कान' सरीखी अनेक मनोहारी कविताओं के चलते भी वे बड़े कवि हैं।

साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन में रुचि लेने वाले अध्येताओं को बताने की ज़रूरत नहीं हैं कि समाज में परिवर्तन कि व्यापक प्रक्रिया में रचनाकार की दोहरी भूमिका होती हैं। जहां एक ओर वह रचना के धरातल पर बृहत्तर समाज की आशाओं व आकांक्षाओं को शब्दबद्ध करते हुए सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया को तीव्र करता है। वहीं दूसरी ओर वह अपने समय व समाज के अच्छे बुरे अनुभवों को इतिहास प्रवाह में अपनी रचनाओं के माध्यम से सुरक्षित रखने में मदद करता हैं। नव- वामपंथी कविता की विभिन्न धाराओं- अंतर्धाराओं के मुद्दों पर यदि विचार करें तो नव- वामपंथी कवियों के माध्यम से ये दोनों काम बखूबी सम्पन्न हो रहे हैं। अनामिका की 'इच्छाऐं' नामक कविता में स्त्री मुक्ति की आकांक्षा के कुछ नवीन सौंदर्यबोधात्मक आयाम देखे जा सकते हैं-

"इच्छाओं की लय भी होती है अलग अलग
कुछ सितार के झाले सी अठगुन में ही
कुछ विलंबित में उठती हैं
अचानक किसी सुर से
(सृष्टि के पहले आलाप की तरह)

और रास्तों में पड़े जंगलों के एक-एक पेड़ से पता पूछती सी

सीधा पहुंचती है ऊंचे दिगंत में
यों ही उड़े जाते पंछी दल के
किसी एक पंछी के
सिहरे हुए एक रोयें तक ।"[8]

अनामिका की कविताओं में परंपरा को लेकर एक संवेदनशील आलोचनात्मक रवैया दिखाई देता है। उनमें वह सच्ची व वयस्क वैचारिकता है जो परंपरा की खोजबीन कर उसी में से रचनात्मक प्रतिरोध के सौंदर्यबोधात्मक बिन्दु ढूंढती हुई पाठक के साथ किसी तात्कालिक प्रभाव के बजाय बोध का रिश्ता कायम करती है। ठेठ राजनीतिक शब्दावली व बड़बोलापन से खुद को जाने अंजाने बचाती हुई नव- वामपंथी कविताएं कई बार अपनी जनपदीय संस्कृति से ऊर्जा प्राप्त कर पित्रसत्त के विरुद्ध संवेदनात्मक

प्रतिरोध दर्ज करने केलिए उपमेय व उपमान तलाशती हैं। सामाजिक समस्याओं को निकट से देखने दिखाने की जो रचनात्मक आतुरता नव वामपंथी कवियों में हैं , वह विचारों की टकराहट से पैदा हुई हैं। 'एक पोस्टकार्ड अनंत को' कविता में अनामिका कहती हैं –

"यह बालू तो मेरी आंखों में है
शायद उस तट का पता जानती है
जिस पर हम गले मिले
मिल लेंगें कभी एक दिन ऐसे
जैसे कि दुविधा से मारे हुए मन में
मिलते हैं निश्चय अनिश्चय।"[9]

इन पंक्तियों से गुजरते हुए अनायास याद आती है महाकवि जायसी की पद्मावती और उसकी हमजोली सखियां ,जिनमें अपनी अनिश्चय भरी व्यथा बयान करती हुई वह कहती है कि पति के आज्ञानुसार मैं वहां जा रही हूँ जहां से फिर लौटकर मिलना शायद असंभव है –

"मिलहू सखी हम तहवां जाहीं,जहां जाई फिर आवन नाहीं||

हम तुम्ह एक मिले संग खेला | अंत बिछोउ आनि केई मेला ||

कंत चलाई का करौं आएसु जाई न मेंटि|
पुनि हम मिलहिं लेहु सहेली भेंटि||"[10]

पुरंचन्द्र जोशी ने अपनी पुस्तक 'परिवर्तन और विकास के सांस्कृतिक आयाम' में माना हैं कि –"आज संस्कृति का प्रश्न इतना अधिक जटिल और व्यापक हो गया है कि उसे बहुमुखी दृष्टिकोण के अलावा समझ पाना कठिन है। इसलिए बहुत ज़रूरी है कि एक ओर संस्कृति के क्षेत्र और दूसरी ओर अर्थशास्त्र, इतिहास, तकनीकी, विज्ञान और राजनीति क्षेत्रों के बीच सेतु निर्मित किया जाए।"[11] कवि संजय कुन्दन के शब्द उधार लेकर कहें तो

'यह सिक्के के तानाशाह होने का दौर है' और इसमें आदमी के भीतर से आदमीयत लगातार गायब होती जा रही है। ऐसे में कवि कुमार अंबुज का वह सौंदर्य विवेक उल्लेखनीय है जिसके तहत नागरिक संवेदना के माध्यम से आज की 'हिंसा की सभ्यता ' और 'क्रूरता की संस्कृति' का प्रतिपक्ष रचा है। वे 'नागरिक पराभव' नामक कविता में लिखते हैं-

"बहुत पहले से प्रारम्भ करूं तो
उससे डरता हूँ जो अत्यंत विनम्र है
कोई भी घटना जिसे क्रोधित नहीं करती
****

ठीक करना चाहता हूँ एक-एक पुर्जा
मगर हर बार खोजता हूँ एक बहाना
हर बार पहले से ज़्यादा ठोस और पुख्ता
मेरी निडरता को धीरे- धीरे चूस लेते हैं मेरे स्वार्थ
अब मैं एक छोटी -सी समस्या को भी –
एक बहुत डरे हुए नागरिक की तरह देखता हूँ
सबको ठीक करना मेरा काम नहीं सोचते हुए

एक चुप नागरिक की तरह हर गलत काम में शरीक होता हूँ।"[12]

यह ठीक ही कहा गया है कि कविता शोरगुल के बीच मनुष्य का एकांत है और सच तो यह है कि यह निजी एकांत ही कविता के सौंदर्य बोध को तय करता है , जिसके लगातार विकसित होने की मौलिक चेष्टा से संस्कृति निर्मित होती है। जिस कवि के सौंदर्य बोध का दायरा जितना व्यापक होगा उसकी कविता में जीवन द्रव्य उतना ही अधिक होगा और विचार दृष्टियों के प्रति उसका रवैया भी उतना ही लचीला होगा। ग्रामशी ने भी स्वीकार किया है कि- "कलाकार के सम्मुख एक परिदृश्य अवश्य होना चाहिए,किन्तु राजनीतिज्ञ की अपेक्षा उसका परिदृश्य अनिवार्यतः कम नपा-तुला और कम निर्दिष्ट होता है और इस तरह वह कम कट्टर होता है।"[13]

अरुण कमल जी अपने समय की ज्वलंत मुद्दों को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करने वाले एक संवेदनशील नव वामपंथी कवि हैं। दरअसल उनकी पूंजीवाद बाज़ारवाद, उपभोक्तावाद, बहुराष्ट्रीय कंपीनियों के वर्चस्वाद, भ्रष्टाचार, अनीति अत्याचार और अन्याय के खिलाफ प्रतिरोध बन जाती हैं। अपने समय के प्रति संवेदना उनकी कविता की खासियत हैं। उनकी कविताओं में अपने समय की सही पहचान मिलती हैं। आज संसार भर में पूंजी हावी है। दिन ब दिन विश्व भर भूख से मरते लोगों की तादात बढ़ते जा रहे हैं। जिनके पास पैसे हैं, वे लोग आम जनता को शोषण का शिकार बनते जा रहे हैं। वास्तव में भूख तथा अकाल पूंजीवादी व्यवस्था की देन हैं। सर्वहारा, हाशिएकृत, मजदूर लोग पूंजीवादी लोगों के खेतों में मेहनत करते हैं, बल्कि मुनाफा पूंजीवादी सत्तावर्ग लेते हैं। इन्हीं लोगों को पेट भर भोजन भी न मिल रहा है। अरुण जी कहते हैं-

पहले खेत बिके
फिर घर फिर जेवर
फिर बर्तन

और वह सब किया जो गरीब और अभागो
तब से करते आ रहे हैं जब से यह दुनिया बनी
इस तरह एक एक कर घर उजड़े गाँव उजड़े
और नगर महानगर बने

पर कोई नहीं बोलता ऐसा हुआ क्यूं
अब कोई नहीं पूछता यह दुनिया ऐसी क्यूं है
बेबस कंगालों और बर्बर अमीरों में बंटी हुई हैं।[14]

पूंजीवादी वर्चस्व ने किसी एक राष्ट्र को नहीं बल्कि सारे संसार को अपने कब्जे में कर लिया है। पूंजीवादी व्यवस्था ने सबकुछ हमारे हाथों से छीन लिया है। हमारी संस्कृति, आचार एवं अनुष्ठान, हमारी सांस्कृतिक विरासत आदि को। इसी कारण आज कल साधारण जनता को ठीक से भोजन नहीं मिलती। उच्च वर्गों के प्रति विद्रोह प्रकट करते हुए नव-वामपंथी कवि कहते हैं -

बाज़ार में बहुत सन्नाटा था
सारा संसार काँच के पार
और मैं शीशे से नाक सटाये
एक जगह जूते दिखे हिरण की खाल के
और कुमार गंधर्व की भरी हुए बोली
अचानक मुझे अमरावती दिखी नमक की डाली
जो झलकी फिर विलीन हो गयी
जिधर मंडी थी दाल की।[15]

बाजारीकरण और बाज़ार अमीर लोगों केलिए हैं। इसमें आम आदमी को कोई भी स्थान नहीं है। बाज़ार में चीज़ों की कीमत बढ़ने के कारण ये चीजेंजो है साधारण लोगों केलिए अप्राप्य है। पूँजी के अभाव के कारण इन लोगों को अपनी मन पसंद चीज़ों को खरीदना मुश्किल हो गया है। पूँजी के इस अप्रतिम वर्चस्व पर व्यंग्यक्रोश करते हुए नव- वामपंथी कवि कहते हैं –

मेरे पास न पूँजी थी न पण्य
मैं बाट भी न थी हाट के आता काम

न पाप कमाया न पुण्य न ही रहा अक्षत
दिन भर घूमता ढाली देह लिए लौटा धामा।[16]

नव-वामपंथी कविताओं में मानवीय संवेदना और मानवीय मूल्यों के विघटन को भी उजागर किये हैं। दुनिया में फैल रही थकान और इस थकान में आबद्ध व्यक्ति को दूसरों से किसी प्रकार का सरोकार नहीं है। वे कहते हैं –

फूलों और भिखारियों को
पीछे छोड़ते हुए हम चलते हैं
रास्ते में बिखरे खून को न देखते
रोते हुए बच्चों से कहते
चुप रहो
अभी चलना है कई साल।[17]

नव वामपंथी कविता में यथार्थ का असर इतना तीव्र और शक्तिशाली है कि सारीवस्तुओं और संसार का संबंध उलट पुलट जाते हैं। भाषा के चौखटें टूटने और चरमराने लगते हैं। यथार्थ का ज़ोर भाषा के सारे साँचे , प्रतीकों और रूप को ढांचेको तोड़ता और ढहाता हुआ कविता कि सतह पर पूरी तरह छा जाती हैं। अपनी अतिशय संवेदनशीलता और कल्पनाशीलता से अमूर्त भावनाओं,अनुभूतियों और वस्तुओं को मूर्त और जीवंत रूप प्रदान करने में नव वामपंथी कवि सफल हुए हैं। पूँजी का फैलता साम्राज्य ने मानवीय संवेदना को सोखता चला जा रहा है। अगर यदि कहीं संवेदनाओं कि नमी कही है तो वह माँ के आँसू में है। वीरेन डंगवाल ने अपनी कविता 'सूखा ' नामक कविता में मध्य वर्गीय परिवार के विषाद भरे जीवन में संवेदनाओं के समाप्त होते अस्तित्व का बड़ा ही करूण चित्र खींचता है-

सूखा पिता के हृदय में था
भाई के आंखों में, बहन के निराशों में था सूखा
माता थी
कुएं कि फूटी जगत पर डगमगाता इखरा पीपल
चमकता मकड़ी के महीन तार को
एक खास कोण पर आँसू कि तरह
सूर्य के प्रचंड साम्राज्य तले
इस भरे पूरे उजाड़ में
केवल कीचड़ में बच रही थी नमी
नामुमकिन था उस में भी निथारा पाना
चुल्लू भर पानी।[18]

'अन्न है मेरे शब्द' नामक कविता संवेदनाओं से जुड़ी एकन श्रीवास्तव की कविता हैं। इसमें घर परिवार, माता पिता, दादी और गाँव के परिवेश का सृजन करते हुए छत्तीसगढ़ अंचल को खोजने का प्रयास किया है। जैसे –

कई महीने बीत गए
ट्रेन में लटकर यहां आए

बिछुड़े अपने गाँव से
लेकिन आज भी
जब सड़क के कंधे से टिककर
भूखे प्यासे सो जाते हैं हम
घुटनों को पेट में मोड़े
तब हज़ारों मील दूर से
हमें देखती हैं
गाँव की आँख।[19]

संक्षेप: संक्षेप में कहे तो नव वामपंथी कविता में काव्यनुभूति की संस्कृति के बदलते आयाम पर सशक्त चित्रण हुआ हैं। सच तो यह है कि विचारधारात्मक आतंक के तहत किया गया ऐसा कोई भी आलोचनात्मक उद्यम कविता के साथ एक सृजन विरोधी व्यवहार और उसकी जटिलता से मुंह चुराने का सरल उपाय होगा। यदि किसी कविता में अपने समय के यथार्थ से कवि की चेतना के विचारधारात्मक संबंध के बजाय सौंदर्यपरक संबंध व्यक्त हो रहा है तो सांस्कृतिक संघर्ष की आंतरिक ज़रूरत के तहत उत्पन्न उसकी सौंदर्यबोधी संवेदनशीलता के सामाजिक अभिप्राय एवं रचनात्मक प्रभाव की अनदेखी नहीं की जानी चाहिए। यह सावधानी खासतौर से उन कविताओं के पाठ पठन के दरमियान ज़्यादा ज़रूरी है, जिनमें वर्चस्वव की संस्कृति के विरुद्ध प्रतिरोध का स्वर ऊंचा होने के बजाए मद्धिम हुआ करता है।बाजारवादी एवं उपभोक्तावादी संस्कृति ने संस्कृति को अपसंस्कृति बनाते जा रहे हैं। मानवीय मूल्य ,नैतिकता और सांस्कृतिक मूल्यों का ह्लाज़ इसीके मुताबिक हुआ है। संवेदनशून्यता, स्वार्थता धोखा छल कपट अन्याय और अनीति इसी का दें है। आज कल मनुष्य इसे समझे बिना इसके पीछे जा रहे हैं। ऐसा नहीं करना चाहिए। यही संदेश नव-वामपंथी कवियों अपनी कविताओं के जरिये बताते हैं। 'संगतकार' नामक कविता में मंगलेश डबराल ने लिखा हैं-

"और उसकी आवाज़ में जो हिचक साफ सुनाई देती है
या अपने स्वर को ऊंचा न उठाने की कोशिश है
उसे विफलता नहीं
उसकी मनुष्यता समझा जाना चाहिए। "[20]

डिवाइन फैथ फेलोशिप सोसाइटी द्वारा प्रकाशित हिन्दी साहित्य की पत्रिका

संदर्भग्रंथ सूची

1. अरुण कमल- पुतली में संसार- वाणी प्रकाशन ,नयी दिल्ली , 1996, पृ. 02
2. अरुण कमल- अपनी केवल धार- वाणी प्रकाशन ,नयी दिल्ली, 1980 पृ. 24
3. राजेश जोशी – धूप खड़ी – राजकमल प्रकाशन , नयी दिल्ली,2002 पृ. 41
4. कात्यायनी – सात भाईयों के बीच चंपा – आधार प्रकाशन, हरियाणा,1994, पृ. 32
5. शिव कुमार मिश्र – मार्क्सवादी साहित्य चिंतन : इतिहास तथा सिद्धांत – मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, मध्यप्रदेश,1986, पृ. १२३
6. गोरख पाण्डेय-जागते रहो सोनेवालो –राधाकृष्ण प्रकाशन, नईदिल्ली,1983, पृ.29
7. कात्यायनी – सात भाईयों के बीच चंपा – आधार प्रकाशन, हरियाणा,1994, पृ.55
8. अनामिका – इच्छाऐं – वाणी प्रकाशन ,नयी दिल्ली , 1982,पृ. 30
9. अनामिका – एक पोस्टकार्ड अनंत को – वाणी प्रकाशन ,नयी दिल्ली, 1982, पृ. 38
10. जायसी – पद्मावत – पृ. 54
11. पुरंचन्द्र जोशी- परिवर्तन और विकास के सांस्कृतिक आयाम – आधार प्रकाशन, हरियाणा,1885,पृ. 83
12. कुमार अंबुज – क्रूरता – राधाकृष्ण प्रकाशन ,नईदिल्ली,1996, पृ. 11
13. शिव कुमार मिश्र – मार्क्सवादी साहित्य चिंतन : इतिहास तथा सिद्धांत – मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, मध्यप्रदेश,1986, पृ. 65
14. अरुण कमल – पुतली में संसार – वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1996, पृ. 55
15. वहीं – पृ. 66
16. वहीं – पृ. 62
17. मंगलेश डबराल – घर का रास्ता – राधाकृष्ण प्रकाशन, नईदिल्ली, 2017, पृ. 88
18. वीरेन डंगवाल – इसी दुनिया में – राधाकृष्ण प्रकाशन, नईदिल्ली,1990, पृ. 51
19. एकान्त श्रीवास्तव – अन्न है मेरे शब्द – आधार प्रकाशन, हरियाणा,1994, पृ. 43
20. मंगलेश डबराल -आवाज़ भी एक जगह है – वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2000 पृ. 90

षैजू के (शोध छात्र)
हिन्दी विभाग
कोच्चिन विश्वविद्यालय कोच्चि, केरल- 682 022,
सम्पर्क - shyjukas@gmail.com, मो. 9656398746

नवीन प्रकाशित पुस्तक

कोरोना काल में भले ही जिंदगी थम सी गई थी और हम सब अपने-अपने घरों में सिमट कर रह गए थे और एक अदृश्य भयावहता के आतंक से त्रस्त-ग्रस्त और आतंकित थे, हम अज्ञान थे इस बात से कि मौत हमें अपने भयानक पंजों में दबोचने के लिए कहाँ बैठी हैं? लेकिन कुछ ऐसे लोग भी थे जिन्होंने अपनी और अपनों की चिन्ता किए बिना इस भयावह और सर्वव्यापी महामारी के दौर में भी अपने कार्य को जारी रखा हुआ था। वह किसी देवदूत अथवा सुपर हीरो से कम नहीं थे और वह थे हमारे कोरोना योद्धा ! यह पुस्तक उन्हीं कोरोना योद्धाओं को कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए समर्पित है।

घरों में सिमटी हुई जिंदगी जैसे थम सी गई थी लेकिन हमारे मस्तिष्क में कहीं न कहीं अनेक प्रश्नों का झंझावात चल रहा था। आखिर यह भयावह स्थिति किस प्रकार बनी? किस कारण बनी? क्यों हम अपने घरों में सिमट कर रह गए? क्या प्रकृति हमसे रूठ गयी? घरों में सिमटी हुई जिंदगी के बावजूद भी मन और मस्तिष्क में विचारों के अंधड़ चलते ही रहे और इन्हीं विचारों की उहापोह से कोरोना काल की कविताओं का सृजन हुआ और उन कविताओं के सृजन से यह नवनीत रूपी कोविड: काव्य संकलन “सिमटी जिंदगी” शैशव से प्रौढ़ता को प्राप्त हुआ। विविधता से परिपूर्ण यह काव्य संकलन कालजयी रचनाओं में सम्मिलित होगा। ऐसी हम आशा करते हैं।

अब यह पुस्तक प्रकाशक की वेबसाइट, अमेज़ोन एवं फिलिप्कार्ट पर बिक्री के लिए लाइव हो गयी है। आप अपनी प्रति दी गयी लिंक Notion Press: https://notionpress.com/read/simatee-zindagee अमेज़ोन : https://www.amazon.in/dp/1638326304 एवं फिलिप्कार्ट से https://www.flipkart.com/simatee.../p/tme83114c7f74db... उक्त लिंक द्वारा खरीद सकते हैं।

ई- प्रदीप

ऑनलाइन पत्रिका